जह्मा ण संति तह्मा । सम्मत्तं सुणहु वोच्छामि ॥ ५ ॥

अर्थ-जिसको सम्यक्त्व नहीं है उसको इन ११ दर्जों में से कोई भी दर्जा नहीं होता है इस कारण मैं सम्यक्त्व का वर्णन करता हूं तुम सुनो-

अत्तागमतच्चाणं । जं सद्दहणं सुणिम्मलं होदी ॥
संकाइदोसरहियं । तं सम्मत्तं मुणेयव्वं ॥ ६ ॥

अर्थ-आप्त आगम और तत्वों में शंका आदिक दोष रहित निर्मल श्रद्धान होने को सम्यक्त्व जानना चाहिये-

अत्ता दोसविमुक्को । पुव्वापरदोसवज्जियं वयणं ॥
तच्चइ जीवदव्वा-। दियाइ समयाहि णेयाइ ॥ ७ ॥

अर्थ-जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है जिसमें पूर्वापर विरोधी कथन नहीं वह आगमहै, और जीव आदिक द्रव्यही तत्व हैं इनको शास्त्र से जानना चाहिये-

छुहतण्हाभयदेसो । राऊ मोहो जरा रुजा चिंता ॥
मच्चु खेऊ सेऊ । अरइ मऊ वीहऊ जम्मं ॥ ८ ॥
णिद्दा तहा विसाऊ दोसा एदेहि वज्जिऊ अत्ता ॥
वयणं तस्स पमाणं । सुत्तत्थपरूपयं जह्मा ॥ ९ ॥

अर्थ-भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, जरा, रोग, चिन्ता मरण, खेद, पसीना, अरति, मद, विभ्रम, जन्म, निद्रा और विषाद यह १८ दोषकहलाते हैं, जो इन दोषोंसे रहितहै वह आप्तहै, सूत्रका अर्थ निरूपणकरनेवाले होनेसे उसके वचन प्रमाण होते हैं और सत्य होतेहैं-

जीवाजीवासववंधसंवराणिज्जरा तहा मोक्खो ॥
एयाइ सत्त तच्चाइ सद्दहणं तस्स सम्मत्तं ॥ १० ॥

अर्थ-जीव, अजीव, आस्रव, बंध संवर निर्जरा, और मोक्ष यह सात तत्त्व हैं इनका श्रद्धान करना सम्यक्त्वहै-

सिद्धा संसारत्था । दुविहा जीवा जिणेहि पण्णत्ता ॥
असरीराणंतचउठ्ठयाणियर णिव्वुदा सिद्धा ॥ ११ ॥

अर्थ-सिद्ध और संसारी दो प्रकार के जीव श्रीजिनेंद्रने कहे हैं। सिद्ध वह हैं जो शरीर रहितहैं, अनंत दर्शन अनन्त ज्ञान

अनन्त वीर्य, और अनन्त सुख संयुक्त हैं, और जन्म मरणादिक से रहित हैं-

संसारत्था दुविहा । थावरतसभेददो मुणेयव्वा ॥
पंचविह थावरा खिदि- । जलग्गिवाऊवणप्फइणो ॥ १२ ॥

अर्थ-संसारी जीव दो प्रकारके जानो, स्थावर और त्रस। स्थावर पांच प्रकारके हैं, पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायु काय और वनस्पति-

पज्जत्तापज्जत्ता । बायरसुहुमा णिगोयणिच्चयरा ॥
पत्तेयपइट्ठियरा । थावरकाया अणेयविहा ॥ १३ ॥

अर्थ-पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, नित्य निगोद, इतरनिगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक इस प्रकार स्थावरजीवोंके अनेक भेद हैं-

बितिचउपंचेंदियभे । यदो तसा चउविहा मुणेयव्वा ॥
पज्जात्तियरसण्णीयर- । विभेयदो हुंति बहुभेया ॥१४॥

अर्थ-दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय इसप्रकार चार भेद त्रसजीवोंके जानने चाहियें, पर्याप्त अपर्याप्त, संज्ञी और असंज्ञी आदिक इनके भेद होकर अनेक भेद होजाते हैं-

आउकुलजोणिमग्गण- । गुणजीवोवग्गपाणसण्णाहि ॥
णाऊण जीवदव्वं - सद्दहणं होय कायव्वं ॥ १५ ॥

अर्थ-आयु, कुल, योनि, मार्गणास्थान, गुणस्थान, उपयोग, प्राण और संज्ञाआदिक जानकर जीव द्रव्य में श्रद्धान करना चाहिये ॥

दुविहा अजीवकाया । दु रूविणो अरूविणो मुणेयव्वा ॥
खंदादेसपएसा । अविभागी रूविणो चदुधा ॥ १६ ॥

अर्थ-अजीवद्रव्यके दो भेद रूपी और अरूपी जानने चाहियें, रूपी चार प्रकार का होता है स्कंध, देश, प्रदेश, और परमाणु-

सयलं मुणेह खंदं । अद्धं देसो पएसमद्धद्धं ॥
परमाणू अविभागी । पुग्गलदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥ १७ ॥

अर्थ-सकल पुद्गल द्रव्यको स्कंध जानना चाहिये स्कन्ध के आधे को देश, देश के आधे को प्रदेश, और जिसका कोई विभाग न होसके उसको परमाणु जानो-

अइथूलथूल थूलं । थूलं सुहमं च सुहमथूलं च ॥
सुहमं च सुहसुसुहमं । धराइयं होइ छब्भेयं ॥ १८ ॥

अर्थ-अति स्थूल स्थूल, स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, और सूक्ष्म सूक्ष्म इस प्रकार पृथ्वी आदिक पुद्गल द्रव्य के छै भेद हैं ॥

पुढवी जलं च छाया । चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु ॥
छहविहभेयं भणियं । पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं ॥ १९ ॥

अर्थ-पृथ्वी, जल, छाया, चारइन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रस, गंध, कर्म और परमाणु इस प्रकार छै भेद पुद्गलद्रव्य के श्रीजिनेंद्रदेवने कहे हैं।

भावार्थ-ऊपरकी गाथा में स्थूल और सूक्ष्म आदिक छै भेद बर्णन किये हैं उनके यह छै दृष्टान्त हैं-

चउविहमरूविदव्वं । धम्माधम्मांवराणि कालो य ॥
गइठाणुग्गहलक्खणाणि । तह वट्टणगुणो कालो ॥ २० ॥

अर्थ-अरूपी अजीव द्रव्यके चारभेद हैं धर्म, अधर्म, आकाश, और काल। धर्मका लक्षण गति, अधर्मका स्थित, और आकाश का अवगाहनहै और कालका गुण वर्तना है-

परमट्ठो ववहारो । दुविहो कालो जिणेहि पण्णत्तो ॥
लोयायासपएसे । णियाणवो मुक्खकालस्स ॥ २१ ॥

अर्थ-परमार्थ और व्यवहार यह दो भेद कालके जिनेंद्रने कहेहैं, परमार्थ कालके अणु, लोकाकाश के प्रदेशों में भरे हुवे हैं।

पदेकारणभूदा । णिच्छयरूवा जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥
तीदाणागदभूदो । ववहारो णंतसमऊ य ॥ २२ ॥

अर्थ-वहही परमार्थकाल कारण रूप होकर जब भूत और भविष्यत् रूप होताहै तब वह व्यवहार काल होता है जिसके अनन्त समय हैं; ऐसा जिनेन्द्रने कहा है-

परिणामिजीवमुत्ता- । एहिं णाऊण दव्वसब्भावं ॥
जिणवयणमणुसरं- । तेहिं थिरमइ होइ कायव्वा ॥ २३ ॥

अर्थ-परिणामीपना, जीव पना, मूर्तिमान् पना से द्रव्य के सद्भावको जानकर जिनवाणी में श्रद्धा करने से अपनी बुद्धिको स्थिर करना चाहिये-

परिणामि जीव मुत्तं । सपएसं एय खित्त किरिया य ॥

णिच्चं कारण कत्ता। सव्वगदमियरम्हि य पवेसो ॥ २४ ॥
दुण्णि य एयं एयं पंच य तिय एय दुण्णि चउरो य ॥
पंच य एयं एयं मूलस्स हि उत्तरं णेयं ॥ २५ ॥

अर्थ-जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य परिणामी हैं, एक जीवद्रव्य चेतनहै और सब द्रव्य अचेतन हैं, एक पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है और सब द्रव्य अमूर्तीक हैं, जीव पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश यह पांच द्रव्य प्रदेशी हैं इसही कारण अस्तिकाय कहलाते हैं, धर्म अधर्म और आकाश यह तीन द्रव्य एक एकही हैं. एक आकाश द्रव्यही क्षेत्रवान् अर्थात् आकाश ही अन्य द्रव्यों को क्षेत्र देताहै, जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य क्रियावान् हैं, धर्म अधर्म आकाश और काल यह चार द्रव्य नित्य हैं क्योंकि इनमें व्यञ्जन पर्याय नहीं है,पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल यह पांच द्रव्य कारण रूप हैं,जीव द्रव्य करता है, एक आकाश द्रव्य सर्वव्यापी है,यह छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहनेवालेहैं

सुहुमा अवायविसया। खणखइणो अत्थपज्जया दिठ्ठा ॥
वंजणपज्जाया पुण। थूला गिरगोयरा चिरविवत्था ॥ २६ ॥

अर्थ-पर्याय दो प्रकारकी है, एक अर्थ पर्याय और दूसरी व्यञ्जन पर्याय, अर्थ पर्याय सूक्ष्म है शब्दसे नहीं कही जासक्ती है और क्षण क्षणमें बदलती है, व्यञ्जन पर्याय स्थूलहै शब्दसे उस का वर्णन होसक्ताहै और चिरस्थाई है-

परिणामजुदो जीऊ। गइगमणुवलभओ असंदेहा ॥
तह पुग्गलो य पाहण-। पहुईपरिणामदंसणा णाऊं ॥ २७ ॥

अर्थ-जीवपरिणामसंयुक्त होकर नरकस्वर्गादि गतिमें जानेवाला होताहै यह जीवकी व्यञ्जन पर्यायहै और पत्थर मिट्टी आदिक पुद्गल की व्यञ्जन पर्याय है-

वंजणपरिणइविरहा। धम्मादीआ हवे अपरिणामा ॥
अत्थपरिणाममासिय। सव्वे विपारिणामिओ अठ्ठा॥ २८ ॥

अर्थ-धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें व्यञ्जन पर्याय नहीं होती है इस अपेक्षासे यह चार द्रव्य अप्रणामी हैं परन्तु अर्थ पर्याय की अपेक्षा सबही द्रव्य परिणामी हैं क्योंकि अर्थ पर्याय सब ही द्रव्यों में होती है-

जीवो हु जीवदव्वं । एकं चिय चेयणाचुया सेसा ॥
मुत्तं पुग्गलदव्वं । रूवाइविलोयणा ण सेसाणि ॥ २९ ॥

अर्थ–एक जीव द्रव्यमें जीवित पणाहै क्यों अन्य किसी भी द्रव्यमें चेतना नहींहै, एक पुद्गल द्रव्यही मूर्तीकहै क्योंकि अन्य किसी भी द्रव्यका रूप दिखाई नहीं देताहै–

सपएस पंच कालं । मत्तूण पएससचया णेया ॥
अपएसो खलु कालो । पएसबंधच्चुदो जह्मा ॥ ३० ॥

अर्थ–काल द्रव्य के सिवाय अन्य पांचद्रव्य प्रदेशवान् हैं इस कारण प्रदेशी अथवा आस्तिकाय कहलातेहैं काल द्रव्य अप्रदेशी अर्थात् अकाय है क्योंकि उसमें प्रदेश बंध नहीं होता है उसके अणुअलगही अलग रहतेहैं–

धम्माधम्मागासा । एकसरूवा पएस अविउग्गा ॥
विवहारकालपुग्गल- । जीवा हु अणेयरूवा वे ॥ ३१ ॥

अर्थ–धर्म अधर्म और आकाश यह तीन द्रव्य अपना अपना एकही स्वरूप रखते हैं, स्वरूपको बदलते नहीं हैं, व्यवहार काल जीव और पुद्गल यह तीन द्रव्य अनेक रूपधारण करते हैं–

आगासमेव खित्तं । अवगाहणलक्खणं जदो भणियं ॥
सेसाणि पुणोऽखित्ता । अवगाहणलक्खणाभावा ॥ ३२ ॥

अर्थ–एक आकाश द्रव्यही क्षेत्रवानहै क्योंकि अवकाश देना उसका लक्षण कहागया है,अन्य पांच द्रव्य क्षेत्रवान् नहींहैं क्योंकि उनका लक्षण अवकाश देना नहींहै–

सकिरिय जीवपुग्गल । गमणागमणाइकिरियउवलंभा ॥
सेसाणि पुण वियाण सु । किरियाहीणा तदाभावा ॥ ३३ ॥

अर्थ–जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य क्रियावानहैं क्योंकि इन में हिलना चलना देखाजाताहै, अन्य चार द्रव्य अक्रियहैं क्योंकि उनमें हिलना चलना नहीं है–

मुत्ताजीवं कायं । णिच्चा सेसा पयासिया समये ॥
वंजणपरिणामचुया । इयरे तं परिणयं पत्ता ॥ ३४ ॥

अर्थ–धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों को जैन सिद्धान्त में नित्यकहाहै क्योंकि इनमें व्यञ्जन पर्याय नहीं है, जीव

और पुद्गल इन दो द्रव्यों में व्यञ्जन पर्याय होती है इस हेतु यह परिणामीहैं और अनित्यहैं—

जीवस्सुवयारकरा । कारणभूया हु पंच कायाई ॥
जीवो सत्ताभूऊ । सो ताणं ण कारणं होई ॥ १९ ॥

अर्थ—पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल यह पांचों द्रव्य जीवका उपकार करते हैं इस हेतु कारणहै,जीवसत्तास्वरूपहै वह किसीकाभी कारण नहीं होताहै—

कत्ता सुहासुहाणं । कम्माणं फलपत्तोयऊ जह्मा ॥
जीवो तफ्फलभोया । भोया सेसाण कत्तारा ॥ ३६ ॥

अर्थ—कर्मोंका शुभ अशुभ फल उत्पन्न करनेवाला जीवहीहै और वहही कर्म फलका भोगनेवाला है, इसकारण कर्ता है अन्य कोई भी द्रव्य न कर्ता है और न भोक्ताहै—

सव्वगदत्ता सव्व । गमयासं ण य सेसगय दव्वं ॥
अपरिणामादीहि य । वोहव्वा ते पयत्तेण ॥ ३७ ॥

अर्थ—सर्वव्यापक होने से आकाश को सर्वगत कहतेहैं अन्य कोई भी द्रव्य सर्वगत नहीं हैं आकाशके अपरिणामी आदिक स्वरूपको यत्नके साथ जानना चाहिये॥

णाणपवेसो वि तहा । णेऊ अण्णोण्णमणुपवेसेण ॥
णियाणियभावं पि सया । एगीहूणं वि ण मुयंति ॥ ३८ ॥

अर्थ—यह छहों द्रव्य एकही क्षेत्र में अर्थात् लोकाकाश में भरे हुवे हैं। भावार्थ—एकही स्थानमें छहों द्रव्य रहते हैं,परन्तु अपने २ भावको कभी नहीं छोड़ते हैं और पृथक् २ जाने जाते हैं—

मिच्छत्ताविरइकसा- । यजोयहेतूहि आसवइ कम्मं ॥
जीवह्मि उहहिमज्झे। जह सलिलं छिद्दणावाए ॥ ३९ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, और योग के कारण से जीवमें कर्मों का आस्रव होता है, जैसा कि छिद्र के कारण छिद्र-वाली किश्तीमें समुद्रके बीच पानी स्रवता है—

अरहंतभत्तियाइसु । सुहोवऊगेण आसवइ पुण्णं ॥
विवरीएण दु पावं । णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ ४० ॥

अर्थ—अरहंत भक्ति आदिक के द्वारा शुभ उपयोगसे पुण्यका

आस्रव होता है और इसके विरुद्ध क्रिया से पापका आस्रव होता है ऐसा श्रीजिनेंद्रने कहा है-

अण्णोण्णाणुपवेसो । जो जीवपएसकम्मखंधाणं ॥
सो पयडिट्ठिदिअणुभव- । पएसदो चउविहो बंधो ॥ ४१ ॥

अर्थ-जीवके प्रदेश और कर्म के स्कंधों का मिलकर एकमेक हो जाना बंधहै, वह बंध चार प्रकार का है, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-

सम्मत्तेहिं वएहिं । कोहाइकसायाणिग्गहगुणेहिं ॥
जोगणिरोहेण तहा । कम्मासवसंवरो होई ॥ ४२ ॥

अर्थ-सम्यक्त्व, व्रत और क्रोधादि कषायों का रोकना आदि गुणों के द्वारा मन वचन और कायकी क्रिया को रोकने से संवर होता है अर्थात् कर्मों का आस्रव रुकजाता है-

सविपागा अविपागा दुविहा पुण णिज्जरा मुणेयव्वा ॥
सव्वेसिं जीवाणं पढमा विदिया तवस्सीणं ॥ ४३ ॥

अर्थ-निर्जरा दोप्रकार की जाननी चाहिये, सविपाक और अविपाक, सविपाक सबजीवों को होती है और अविपाक तपस्वी को ही होती है-

जह रुद्धम्मि पवेसे । सुस्सइ सरपाणियं रविकिरणेहिं ॥
तह आसवे णिरुद्धे । तवसा कम्मं मुणेयव्वं ॥ ४४ ॥

अर्थ-यदि तालाब में पानीका आना बंदकरदिया जावे तो तालाब का पानी सूर्य्यकी धूपसे सूखजाता है इसही प्रकार कर्मों का आस्रव रोकदेने पर तपकरनेसे कर्म नाश होजातेहै-अर्थात जीव कर्म रहित होजाताहै-

णिस्सेसकम्मोक्खो । मोक्खो जिणसासणे समुद्दिट्ठो ॥
तह्मि कये जीवो यं । अणुहवइ अणंतयं सोक्खं ॥ ४५ ॥

अर्थ-सर्व कर्मों का नाश होनेको जैन सिद्धान्त में मोक्ष कहा है, ऐसा होने से जीव अनन्त सुखका अनुभव करता है-

णिद्देसं सामित्तं । साहणमहियरणठिदिविहाणाणि ॥
एएहि सव्वभावा । जीवादीया मुणेयव्वा ॥ ४६ ॥

अर्थ-निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, और विधान जीव आदिक द्रव्योंके यह सब भाव जानने चाहियें-

सत्तवि तच्चाणि मए । भणियां जैणागमाणुसारेण ॥

एयाणि सद्दहंतो। समाइट्ठी मुणेयव्वो ॥ ४७॥

अर्थ-जैन सिद्धान्त के अनुसार मैने सात तत्वोंका वर्णन किया है, जो कोई इन तत्वोंका श्रद्धान करता है उसको सम्यक्दृष्टि समझना चाहिये-

णिस्संका णिक्कंखा। णिव्विदिगिच्छा अमूढदिट्ठी य॥

उवगूहण ठिदियरणं। वच्छल्ल पहावणा चेव॥ ४८॥

अर्थ-निःशङ्का, निष्काङ्क्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़ दृष्टित्व, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना यह सम्यक्त्व के आठ अंग हैं-

संवेऊ णिव्वेऊ। णिंदा गरहा उवसमो भत्ती॥

वच्छल्लं अणुकंपा। अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते॥ ४९॥

अर्थ-संवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, और अनुकम्पा यह सम्यक्त्व के आठ गुण होतेहैं-

इच्चाइगुणा बहुऊ। सम्मत्तविसोहिकारया भणिया॥

जो उज्जमेदि ऐसु। सम्माइट्ठी जिणक्खादो॥ ५०॥

अर्थ-इत्यादिक यह सर्व गुण सम्यक्त्वकी शुद्धि करनेवालेहैं, जो कोई इन गुणोंकी प्राप्तिमें उद्यम करता है उसको श्रीजिनेन्द्र ने सम्यक्दृष्टि कहाहै-

संकाइदोसरहिऊ। णिस्संकाइगुणजुयं परमं॥

कम्मणिज्जरणहेऊ। तं सुद्धं होइ सम्मत्तं॥ ५१॥

अर्थ-जो कोई जीव शङ्का आदि दोषसे रहित और निःशङ्क आदि गुण संयुक्तहै उसका सम्यक्त्व उत्कृष्ट शुद्ध और कर्मों की निर्जरा करनेवाला होता है-

रायगिहे णिस्संको। चोरो णामेण अंजणो भणिऊ॥

चंपाए णिक्कंखा। वणिगसुदाणंतमइणामा॥ ५२॥

णिव्विदिगिच्छो राऊ। उद्दायणु णाम रूद्दवरणयरे॥

रेवइ महुराणयरे। अमूढदिट्ठी मुणेयव्वा॥ ५३॥

ठिदियरणगुणउपत्तो। मागहणयरम्मि वारिसेणो हु॥

हथणापुरम्मि णयरे। वच्छल्लं विण्हुणा रइयं॥५४॥

उवगूहणगुणजुत्तो। जिणयत्तो तामलित्त णयरए॥

वज्जकुमारेण कया । पहावणा चेव महुसए ॥ ५५ ॥

अर्थ-राज गृह नगरमें अंजन चोर निःशंकित अंगका पालने वाला प्रसिद्ध है, चंपा नगरी में अनंत मती एक बनिये की पुत्री निष्कांक्षा अंग पालने में विख्यात है, रौद्रवरनगरमें ओद्दायन राजा निर्विचिकित्सा अंग पालने में और मथुरा नगर में रेवती रानी अमूढ़ दृष्टित्व अङ्ग पालने में मशहूर है, मागध नगर में वारिषेण राजा स्थिति करणके पालने में और हस्तिनापुर नगरमें विष्णु कुमार वात्सल्य अंग पालनेमें विख्यात है, ताम्रलिप्त नगर में जिनदत्त सेठ उपग्रहण अंगके पालनेमें और मथुरा नगरमें वज्र कुमार प्रभावना अंगके पालने में मशहूरहै-

एरिसगुण अठजुयं । सम्मत्तं जो धरेइ दिढचित्तो ॥
सो हवइ सम्मादिठी । सद्दहमाणो पयत्थे य ॥ ५६ ॥

अर्थ-पदार्थों में श्रद्धान रखनेवाला जो कोई उपरोक्त अष्टगुण संयुक्त और दृढ़चित्त होकर सम्यक्त्व को अंगीकार करता है वह सम्यक्दृष्टि होता है-

पहलीप्रतिमादर्शनश्रावक।

पंचुंवरसहियाई । सत्तवि विसणाइ जो विवज्जेई ॥
सम्मत्तविसुद्धमई । सो दंसणसावऊ भणिऊे ॥ ५७ ॥

अर्थ-पांचउदम्बर और सात व्यसन को जो कोई सम्यक्दृष्टि त्याग करता है उसको दर्शन श्रावक कहते हैं अर्थात् वह पहली प्रतिमाका धारी होताहै-

उंवरवडपीपलपियपायरसंधाणतरुपसूणाइं ॥
णिच्चं तससंसिद्धाइ ताइं परिवज्जियव्वाइं ॥ ५८ ॥

अर्थ-गूलर, बड़, पीपल, पिलखन, और अंजीर यह पांच फल तथा संधाणा, (अचार) और वृक्षों के फूल इन सबमें त्रसजीवों की निरंतर उत्पत्ति होती है इसे वास्ते यह सब त्यागने योग्य हैं-

जूयं मज्जं मंसं । वेसा पारद्धि चोर परयारं ॥
दुग्गइगमणस्सेदा- णि हेउभूदाणि पावाणि ॥ ५९ ॥

अर्थ-जूआ, शराब, मांस, वेश्या, शिकार, चोरी, और परस्त्री यह सात कुव्यसन दुर्गतिमें लेजानेवाले पाप हैं-

जूयं खेलंतस्स हु । कोहो माया य माणलोहा य ॥
एए हवंति तिव्वा । पावइ पावं तदो बहुलं ॥६०॥

अर्थ-जूआ खेलने से मान,माया, लोभ, क्रोध तीव्र होजाते हैं जिसमें अधिक पाप उत्पन्न होताहै ॥

पावेण तेण जरमर-। णवीचिपवरम्मि दुक्खसलिलम्मि ॥
चउगइगमणावत्त- । म्मि हिंडइ भवसमुद्दम्मि ॥ ६१ ॥

अर्थ-इन पापों के कारण वह ऐसे संसार समुद्र में भ्रमताहै जिसमें बुढापा और मरण आदिक अनेक रोग और अत्यंत दुःखहैं और जहाँ चतुर्गति में घूमना पड़ताहै ॥

तत्थवि दुक्खमणंतं । छेयणभेयणविकत्तणाईणं ॥
पावइ सरणविरहिऊ । जुव्वस्स फलेण सो जीवो ॥६२॥

अर्थ-जूआ खेलनेवाला शरणरहित होकर जूआ खेलने के फल के कारण इस संसारमें छेदन भेदन कतरन आदिक अनंत दुःख भोगता है-

ण गणइ इट्ठमित्तं । ण गुरुं ण मायरं य पियरं वा ॥
जूयंधो ण मणणइ । जह कुणइ अवज्जं बहुलं ॥६३॥

अर्थ-जूआ खेलने में अन्धा हुआ पुरुष इष्टमित्र को गुरु को माता को वा पिता को कुछ नहीं गिणता है इसकारण स्वच्छन्द होकर बहुत पाप करता है-

सजणे य परजणे वा । देसे सव्वत्थ होइ णिलज्जो ॥
मायावि ण विस्ससई । वच्चइ जूवं रमंतस्स ॥ ६४ ॥

अर्थ- जूआ खेलनेवाला स्वजनों में परजनोंमें देशमें परदेशमें सबही जगह निर्लज्ज होताहै उसकी बात का विश्वास उसकी माता भी नहीं करती है-

अग्गिविसचोरसप्पा । दुक्खं थोकं कुणंति इहलोए ॥
दुक्खं जणयइ जूयं । णरस्स भवसयसहस्सेसु ॥ ६५ ॥

अर्थ-इस लोक में आग,जहर,चोर और साँप तो कमती दुःख देनेवाले हैं परन्तु जूआ खेलनेसे मनुष्य को सैकड़ों और हजारों भव में दुःख उठाने पड़ते हैं-

अक्खेहि णरो रहिऊ । ण मुणइ सेसिंदिएहि वेएइ ॥

जूयंधो ण य केणवि। जाणवि संपुण्णकर णोवि ॥६६॥

अर्थ-जो आँखों का अन्धाहै वह यद्यपि नहीं देखसक्ताहै परन्तु अन्य इन्द्रियों से तो कुछ जान लेताहै, और जो कोई जूआ खेलने में अन्धा होरहाहै वह पांचों इन्द्रियोंके होते हुवे भी कुछ नहीं जानताहै-

अलियं करेइ सवहं। जंपइ मोसं मणेइ अइदुट्ठं ॥
पासम्मि वहिणिमायं। सिसुं पि हणेइ कोहंधो ॥ ६७ ॥

अर्थ-वह उल्टी २ सौगन्द खाता है, झूठी बकवाद मारता है, दुष्ट वचन बोलताहै, और क्रोधमें अन्धा होकर छोटी बहन, माता और बालकको भी मारने लगताहै-

ण य भुंजइ आहारं। णिदं ण लहेइ रत्तिदिण्णंति ॥
कुत्थवि ण कुणेइ रइं। अत्थइ चिंताउरो णिच्चं ॥ ६८ ॥

अर्थ-वह नित्य चिंतावान रहताहै, न खाना खाता है और न रातदिन सोताहै और न किसीसे प्रीति करताहै-

इच्चेवमाइ वहुलं। दोसं णाऊण जूयरमणम्मि ॥
परिहारियव्वं णिच्चं। दंसणगुणजुयमहंतेण ॥ ६९ ॥

अर्थ-जूआ खेलनेमें इस प्रकार महान्दोष जानकर दर्शन प्रतिमावाले उत्तम पुरुषको जूएका सदाही त्याग करना चाहिये-

मज्जेण णरो अवसो। कुणइ कम्माणि णिलज्जाइं ॥
इहलोए परलोए। अणुहवइ अणंताइ दुक्खाइं ॥ ७० ॥

अर्थ-शराब पीने से मनुष्य स्वच्छन्द होकर निर्लज्ज क्रिया करताहै और इस लोक तथा परलोकमें अनन्त दुःख उठाता है-

अइलंघेय विचिट्ठो। पडेइ रत्थायंगणे मत्तो ॥
पडियस्सं सारमेया। वयणं विलिहंति जिब्भाय ॥ ७१ ॥

अर्थ-शराब पीनेवाला रीतिको उल्लंघन करके बेसुध होकर रस्ते में गिड़पड़ताहै और उसके शरीरको कुत्ते चाटने लगते हैं-

उच्चारं पस्सवणं। तत्थेव कुणंति तं समुल्लवई ॥
पडिवुवि सुरा मिट्ठो। पुणो वि मे देइ मूढमई ॥ ७२ ॥

अर्थ-कुत्ते उसके मुंहमें मूतते हैं और वह मूर्ख उस मूतका स्वाद लेकर कहता है कि बहुत मीठी शराब है और भी दे-

जं किंचि तस्स दव्वं । अजाणमाणस्स हिंय परेहिं ॥
लहिऊण किंचि सण्णं । इदो तदो धवाइ खलंतो ॥ ७३ ॥

अर्थ–उस बेसुध पड़े हुवे का द्रव्य अन्य लोग हर लेजाते हैं, जब उस को कुछ होश आतीहै तो गिरता पड़ता लोगों के पीछे दौड़ताहै

जेण हु मज्झ दव्वं । गहियं दुठ्ठेण सेज्ज मो कुद्धो ॥
कहि जाय सो जिवंतो । सीसं छिंदामि खग्गेण ॥ ७४ ॥

अर्थ–और इस प्रकार बकता जाता है कि जिस बदमाश ने मेरा द्रव्य लियाहै और मुझको क्रोध उपजाया है वह जीता बचकर कहां चला जायगा, मैं उसका सिर खड्गसे काटूंगा–

एवं सो गज्जंतो । कुविऊ गंतूण मंदिरं णियंयं ॥
छित्तूण लउडि सहसा । रुट्ठो भंडाई फोडेई ॥ ७५ ॥

अर्थ–इस प्रकार वह क्रोध में गरजता हुवा अपने घरजाता है और खिजाहुवा लाठीसे घरके बर्तनों को फोड़ता है–

णियंयं पि सुयं वहिणिं । अणिच्छमाणं बला विधंसेइ ॥
जंपइ अज्जवजिज्जं । ण विजाणइ किंपि य पमत्तो ॥ ७६ ॥

अर्थ–वह अपने बेटेको बहन को और अन्य भी सब को जिनको अपनी इच्छा के अनुकूल नहीं समझता है मारने लगता है और ऊतपटांग बकने लगता है, वह बेसुध हुवा कुछ नहीं जानता है कि क्या कररहा हूं–

इयअवराइनि बहुसो । काऊण बहू णिलज्जकज्जाणि ॥
अणुवंधइ बहु पावं । मज्जस्स वसंगदो संतो ॥ ७७ ॥

अर्थ–शराबके नशे के बश होकर इत्यादिक अनेक निर्लज्जकार्य करनेसे वह बहुत पाप बंध करताहै–

पावेण तेण बहुसो । जाइजरामरणसावयाइण्णे ॥
पावइ अणंतदुक्खं । पडिऊ संसारकंतारे ॥ ७८ ॥

अर्थ–इन पापों के कारण वह संसार बनमें पड़कर जन्म जरा मरण आदिक अनन्त दुःख उठाता है–

एवं बहुप्पयारं । दोसं णाऊण मज्जपाणम्मि ॥
मणवयणकायकयका- । रिदाणुमोएहि वज्जिज्जो ॥ ७९ ॥

अर्थ–शराब पीनेमें इस प्रकार बहुत से दोष जानकर मन वचन

काय और कृतकारित अनुमोदना अर्थात सर्वप्रकार से इसका त्याग करना चाहिये।

जह मज्जं तह य महू। जणयदि पावं णरस्स अइबहुगं ॥
असुइव्व णिंदणीयं। वज्जेयव्वं पयत्तेण ॥ ८० ॥

अर्थ-शराब के समान शहदसे भी मनुष्यको बहुत पाप होता है इस अपवित्र और निंदनीय वस्तुका त्याग यत्न के साथ करना चाहिये,

दट्ठूण असणमज्झे। पडियं जइ मच्छियंपि णिठिवई ॥
कह मच्छियंडयाणं। णिज्जासं णिग्घिणो पिवई ॥ ८१ ॥

अर्थ-यदि भोजन में मक्खी पड़ी हुई नजर आजाती है तो मनुष्य उस भोजनसे घृणा करताहै, परन्तु नहीं मालूम मक्खियों के अंडों के रसको अर्थात् शहद को विना घृणा किये कैसे पीलेता है-

? भो जिब्भिंदिय लुद्धया। ण मक्खेयरं पलो एह ॥
? किं मक्खियणिज्जासं। महु प्पवित्तं भणंति जदो ॥ ८२ ॥

अर्थ-हे जिह्वा लंपट तू मक्खियोंको मत खा-तुम शहदको जो मक्खियों का रसहै किस प्रकार पवित्र कहतेहो-

लोगे वि सुप्पसिद्धं। वारहगामाइ जो दहइ अदऊ ॥
तत्तो सो अहिययरो। पाविट्ठो जो महुं हणई ॥८३ ॥

अर्थ-लोकमें भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो निर्दयी १२ ग्रामों को फूँकता है उससे भी अधिक पापी वह है जो शहद के छत्त को तोड़ता है-

जो अवलेहइ णिच्चं। णिरयं सो जाइ णत्थि संदेहो ॥
एवं णाऊण फुडं। वज्जइदव्वं महुं तह्मा ॥ ८४ ॥

अर्थ-जो नित्य शहद खाताहै वह अवश्य नरकमें जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है, ऐसा जानकर शहद का त्याग करना चाहिये-

मंसं अमेज्झसरिसं। किमिकुलभरियं दुगंध वीभच्छं ॥
पाएणावि ण छिवेयं। णं तीरए तं कहं भोत्तुं ॥ ८५ ॥

अर्थ-मांस अमेध्य अर्थात् विष्टा के समान है, बहुत जातिके कीड़ोंकी खानहै, दुर्गन्धि युक्त है, और घिणावणा है, वह पैरों से

भी छूने योग्य नहींहै और न पास जाने योग्य है, वह मांस खाने योग्य कैसे होसक्ता है-

मंसासणेण वड्ढइ। दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ॥
जूयंपि रमइ तोत्तं। (पिविणए?) इ पाउण दोसो॥ ८६॥

अर्थ-मांस खानेसे उन्माद होता है, उन्मादी शराबकी इच्छा करता है और जूआ खेलता है इस हेतु इससे यह दो दोष भी उत्पन्न होते हैं-

लोइयसत्थम्मि वि व-। ण्णियं जहा गयणगमिणो वि॥
भुवि विप्पा मंसासणेण। पडिमो तह्मा वज्जियं मंसं॥ ८७॥

अर्थ-लौकिकशास्त्र में भी ऐसा वर्णन है कि कोई महान् ब्राह्मण आकाश में जाताथा परन्तु मांसके खानेसे जमीनपर गिरपड़ा, इस कारण मांसका त्याग करना चाहिये-

कारुयाकिरायचंडा-। लडोंवपारसियाणमुच्छिट्ठं॥
सो भक्खेइ जो सह-। वसई एयरत्ति पि वेस्साई॥ ८८॥

अर्थ-जो कोई एकरात भी वेश्या से भोग करता है वह धोबी किरात चांडाल डोंथारी पारश आदि नीच लोगों की झूठ खाताहै-

रत्तं णाऊण णरं। सव्वस्सं हरइ वचणसएहिं॥
काउण मुंचइ पच्छा। पुरुसं चम्मट्ठिपरिसेसं॥ ८९॥

अर्थ-वेश्या मनुष्य को अपने ऊपर आसक्त जानकर सैकड़ों ठगबाजी से उसका सर्वस्व हर लेतीहै और जब उस पुरुष में चाम और हाड़ ही बाकी रहजाताहै तब उसको छोड़ देती है-

पभणइ पुरऊ एय-। स्स सामि मुत्तूण णत्थि मो अण्णो॥
वच्चइ अण्णस्स पुणो। करेइ चाटूणि बहुयाणि॥ ९०॥

अर्थ-एक पुरुषसे वह कहती हैं कि तुम्हारे सिवाय मेरा कोई स्वामी ही नहीं है इसीही प्रकार दूसरे मनुष्य से भी अनेक चाल की बातें बनाती है-

माणी कुलजो सूरो। वि कुणई दासत्तणं पि णीयाणं॥
वेस्साक एण बहुगं। अवमाणं सहइ कामंधो॥ ९१॥

अर्थ-कामान्ध पुरुष कैसा ही मानीहो कुलवान हो शूरवीर हो परन्तु उसको नीच पुरुषों का दास बनना पड़ता है और वेश्याके कारण बहुत अपमान सहने पड़तेहैं॥

जे मज्जमंसदोसा । वेस्सागमणे वि हुंति ते सव्वे ॥
पावंपि तत्थ दिट्ठं । पावइ णियमेण सविसेसं ॥९२॥

अर्थ-शराब और माँस में जो दोष हैं वह सब दोष वेश्यागमन में भी प्राप्त होते है, इसकारण वेश्यागमन में वह पापभी होते हैं और उनसे अधिक भी होते हैं-

पावेण तेण दुक्खं । पावइ संसारसायरे घोरे ॥
तह्मा परिहरियव्वा । वेस्सा मणवयणकाएहिं ॥ ९३ ॥

इन पापोंसे संसार सागरमें घोर दुःख उठाने पड़ते हैं, इसकारण मन वचन कायसे वेश्या का त्याग करना चाहिये-

सम्मत्तस्स पहाणो । अणुकंवा वण्णिउ जह्मा ॥
पारद्धिरमणसीलो । सम्मत्तविराहउ तह्मा ॥९४॥

अर्थ-सम्यक्त्व का प्रधान कारण अनुकम्पा अर्थात् दयाहै इस कारण शिकार खेलनेवाला सम्यक्त्व का नाश करनेवाला है-

दट्ठूण मुक्ककेसं । पलायमाणं तहा पराहूतं ॥
रदधरियतिणं सूरा । कयापराहं पि ण हणंति ॥ ९५ ॥

अर्थ-जो बालों को छोड़े हुवे भागताहै और पराधीन होकर दांतों में तिनका लिये हुये है ऐसे जीव को देखकर चाहे वह अपराधी भी है परन्तु शूरबीर पुरुष उसको नहीं मारताहै—

णिच्चं पलायमाणो । तिणचारी तह णिरापराहे वि ।
कह णिग्घणो हणिज्जइ । आरण्णणिवासिणो विमए ॥ ९६ ॥

अर्थ—नित्य भागजानेवाले, घास खानेवाले, बेक़सूर, और जंगलमें रहने वाले गरीब पशुको शिकार करनेवाला क्यों मारताहै-

गोवंभणमहिलाणं । विणिवाए हवइ जह महापावं ॥
तह इयरपाणिघाए । वि होइ पावं ण संदेहो ॥ ९७ ॥
गोवंभणत्थिपापं । परिहरमाणस्स होइ जइ धम्मो ॥
सव्वेसिं जीवाणं । दयालुता किं ण सो जाये ॥ ९८ ॥

अर्थ-गौ, ब्राह्मण, और स्त्री को मारनेसे जो महान्पाप होता है वहही अन्य जीवों के मारने से भी होताहै, इसमें कोई संदेह नहीं, जिस प्रकार गौ, ब्राह्मण और स्त्री की हत्या न करने से,धर्म होताहै इसही प्रकार अन्य जीवोंपर दया करनेमें भी धर्म क्यों नहीं होताहै-

महुमज्जमंससेवी । पावइ पावं चिरेण जं घोरं ॥
तं एयदिणे ण पुरिसो । लहेइ पारद्धि देसविरएण ॥ ९९ ॥

अर्थ-चिरकाल तक शहद, शराब, और मांसका सेवन करनेसे जितना घोर पाप होता है उतनाही घोर पाप गृहस्थी श्रावकको एक दिन शिकार खेलनेसे होताहै-

संसारम्मि अणंतं । दुक्खं पावेदि तेण पावेण ॥ १०० ॥
तह्मा विवज्जियव्वा । पारद्धी देसविरएण ॥

अर्थ-शिकार खेलने के पापसे संसार में अनन्त दुःख होता है इस कारण गृहस्थी श्रावक को शिकार का त्याग करना चाहिये-

परदव्वहरणसीलो । इहलोए असाय बहुलाऊं ॥
पाउणइ जायणाऊ । ण कयां वि सुहं विलोएहि ॥ १०१ ॥

अर्थ-परद्रव्य हरनेवाला अर्थात् चोरी करनेवाला इस लोकमें बहुत दुःख उठाता है और कभी भी सुख नहीं देखता है-

हरिउं परस्स धणं । चोरो परिवेवमाणसव्वंगो ॥
चइऊण णिययगेहं । धावइ उपहेण संतत्तो ॥ १०२ ॥

अर्थ-चोर पराये धन को हरकर डरकेमारे थरथर कांपता है और अपने घरको छोड़कर त्रास भोगता हुवा इधर उधर भागता फिरताहै

किं केण वि दिट्ठो हं । ण वेदि हिदएण धगधगंतेण ॥
लहुकई पलायमाणो । खलई णिदं ण लहेइ भयविट्ठो ॥ १०३ ॥

अर्थ-क्या मुझे किसीने देख लियाहै, नहीं देखा नहीं है, इस प्रकार उस का हृदय कांपता रहता है, वह लुक छिपकर भागता रहता है और भयके कारण उसको नींद नहीं आती है-

णो गणेइ मायवप्पं । गुरुमित्तं साभिणं तवस्सिं वा ॥
परवलेण हरइ छलेण । किंचिण्णं किंपि जं तेसिं ॥ १०४ ॥

अर्थ-माता, बाप, गुरु, स्वामी, और साधु को भी चोर कुछ नहीं गिनता है, उनका माल भी जो कुछ मिलता है जबरदस्तीसे या छलसे हरलेता है-

लज्जा तहाभिमाणं । जससीलविणासमादणासं च ॥
परलोयभयं चोरो । अगणंतो साहसं कुणई ॥ १०५ ॥

अर्थ-लज्जा, अभिमान, यश, शील, आत्मा, और परलोक भयका नाश करनेसे चोर अनगणित साहस करताहै-

हरमाणे परदव्वं । दट्ठूणारक्खिएहि तो सहसा ॥
रज्जूहि बंधऊणं । घिप्पइ सो मोरबंधेण ॥१०६॥
हिंडावज्जइ टिंटइ । रत्थासु चडाविऊण खरपुट्ठिं॥
वित्थारज्जइ चौरो । एसो त्ति जणस्स मज्झम्मि॥ १०७॥
अण्णो वि परस्सं जो । हरेइ सो एरिसं फलं लहई॥
एवं भणिऊण पुणो । णिज्जइ पुरबाहिरे तुरियं ॥ १०८ ॥
णेउध्दारं अहवा । पाणिपायं गहणं सिसुभणं ॥
अहवा जीवंतस्स वि । मूलविराहणं किरेइ खलेहिं॥ १०९॥

अर्थ-चोरको पराया द्रव्य हरते हुये यदि चौकीदार देखलेताहै तो वह उसको पकड़कर, रस्सी से बांधकर, व कमरसे जकड़ कर और गधेपर चढ़ाकर गली २ में घुमाता हुवा लोगोंमें यह कहता है कि देखो चोरका ऐसा हाल हुवा करताहै, और भी जो कोई पराया माल हरैगा उसका भी यहही हाल होगा, इस प्रकार कहता हुवा तुरंत उसको गांवसे बाहर लेजाताहै, और उसकी आंख फोड़ देताहै या हाथ पैर काटकर उसको विरूप कर देता है या जानसेही मारडालता है-

एवं पिच्छंतो विहु । परदव्वं चोरयाइ गिण्हंति ॥
ण मुणंति किमपि साहियं । पेच्छह हो मोहमाहप्पं ॥ ११० ॥

अर्थ-इस प्रकारकी दशा देखते हुवे भी जो मनुष्य पराये मालको चुराकर ग्रहण करते हैं वह नहीं जानते हैं कि अपना हित क्याहै, अहो इस मोहके माहात्म्य को देखो-

परलोए वि य चौरो । चउगइसंसारसायरे णिम्मण्णो ॥
पावइ दुक्खमणंतं । तेयं परिवज्जय तह्मा ॥ १११ ॥

अर्थ-चतुर गति रूप संसारसागर में डूबकर चोर परलोकमें भी अनन्त दुःख उठाताहै; इस कारण चोरीका त्याग करना चाहिये

दट्ठूण परकलत्तं । णिव्वुद्धी जो करेइ अहिलासं ॥
ण य किंपि तत्थ पावइ । पावं एमेव अज्जेई ॥ ११२ ॥

अर्थ-पराई स्त्रीको देखकर निर्बुद्धि पुरुष उस स्त्रीकी अभिलाषा करताहै परन्तु वह स्त्री तो उसको मिलती नहीं और पापबंध अवश्य होजाता है-

णिस्सासइ रुयइ गायइ णियसिरं हणइ महीयले पडइ ॥
परमहिलमलभमाणो । असप्पलावं पि जप्पेई ॥ ११३ ॥

अर्थ-परस्त्री का अभिलाषी पुरुष लंबे २ सांस लेताहै, रोताहै, गाताहै, अपना सिर फोड़ता है, धरती पर गिरताहै, झूठी बकवाद भी करने लगताहै-

चिंतेइ मं किमिच्छइ । ण वेइ सा केण वा उवाएण ॥
आणेमि कस्स वि णवे ! । ण वे ति चिंताउरो सददं ॥ ११४ ॥

अर्थ-वह सोचमें पड़ा हुवा विचार करता रहता है कि वह स्त्री मेरी चाहना करतीहै कि नहीं, वह मेरे वशमें नहीं आतीहै मैं क्या उपाय करूं, उसको किसतरह लाऊं, किसीसे कहूं या न कहूं-

ण कुत्य वि कुणइ रई । मिठं मि य भोयणं ण भुंजेई ॥
णिदं पि अलहमाणो । इत्थीविरहेण संतत्तो ॥ ११५ ॥

अर्थ-स्त्रीके विरहसे संतप्त हुवा वह कहीं भी चित्त नहीं लगाता है, मीठा अर्थात् स्वाद भोजन भी उससे नहीं खाया जाता है और उसको नींद भी नहीं आतीहै-

लज्जा कुलकमं छं- । डिऊण मज्जाइभोयणं किच्चा ॥
परमहिलाणं चित्तं । अमुणंतो पच्छणं कुणइ ॥ ११६ ॥

अर्थ-वह लज्जा और अपने कुलकी मर्यादा को छोड़कर और शराब आदिक पीकर पराई अनजान स्त्री से भी प्रार्थना करताहै

णेच्छति जइ वि ताऊ । उवयारसयाणि कुणई सो ॥
तह विणिब्भहिज्जत्तो । पुण अप्पाण झूरइ विलक्खो ॥ ११७ ॥

अर्थ-वह स्त्री उसको नहीं चाहती है अर्थात् उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती है तो भी सैकड़ों बातें बनाता है और झिड़के खाता है और झुरता है-

अह भुंजइ परमहिलं । अणिच्छमाणं बला धरेऊण ॥
किं तत्थ हवइ सुक्खं । पच्चेलिउ पावइ दुक्खं ॥ ११८ ॥

अर्थ-जब परस्त्री इस प्रकार राजी नहीं होती है तो जबरदस्ती करताहै, परन्तु ऐसी दशा में क्या आनन्द मिलताहै और पीछे दुःख उठाना ही पड़ता है।

अह का वि पावबहुला । असई णिण्णासिऊण णियसीलं ॥

सयमेव पीडियाऊ । उवराहवसेण अप्पाणं ॥ ११९ ॥
जइ देवि तत्थ सुणहरे- । खंडदेउलयमज्झम्मि ॥
सचिंतो भयभीदो । सोक्खं किं तत्थ पाउणई ॥ १२० ॥

अर्थ-यदि कोई दुराचारणी पापिनी स्त्री अपने शील का नाश करके कामीपुरुष की प्रार्थना को मंजूर करले और किसी खाली मकान या किसी टूटे फूटे मंदिर आदिक में अपने आपको उस कामी पुरुष को सोंप भी देवे तो वहाँ वह कामीपुरुष चिंतावान् और भयभीत हुवा क्या आनन्द उठा सक्ताहै-

सोऊण किं पि सद्दं । सहसा परिवेवमाणसव्वंगो ।
छिल्पइ पलाइ लुक्कइ । चउदिसं णियइ भयभीऊ ॥ १२१ ॥

अर्थ-वह किसी प्रकारकी भी जरासी आवाज सुनकर घबराकर कांपने लगताहै, छिपता है, भागता है और भयभीत और बेचैन होकर चारोतरफ देखताहै—

जइ पुण केण वि दीसइ । णिव्वज्जइ तो बंधिऊण णिवगेहं ॥
चोरस्स णिग्गहं सो । इत्थइ पाउणइ सविसेसं ॥ १२२ ॥

अर्थ-इसपर भी यदि कोई देखलेता है तो उसे बांधकर राज दरबार में लेजाता है, वहां वह चोर से भी अधिक दण्ड पाता है-

पेच्छह मोहविडंवण । लोगो दट्ठूण एरिसं दोसं ॥
पेच्छंत तह वि खलो । परत्थिमहिसलादि दुच्चित्तो ॥ १२३ ॥

अर्थ-मोह की विडंबना को देखो कि लोकमें दोषों के दृश्यको देखतेहुवे भी दुष्ट लोग परस्त्री की अभिलाषा करते हैं-

परलोयम्मि अणंतं । दुक्खं पाउणादि भवसमुद्दम्मि ॥
परयांरो परमहिला । तम्हा तिविहेण वज्जिज्जा ॥

अर्थ-परस्त्री सेवन से जन्मान्तरमें भी इस संसारसागरमें अनन्त दुःख उठाने पड़ते हैं इसकारण मन वचन कायसे परस्त्री सेवनका त्याग करना चाहिये-

रज्जभंसं वसणं । वारहसंवच्छराणि वणवासं ॥
पत्तो तहावमाणं । जूएण जुहिट्ठिरो राया ॥ १२५ ॥

अर्थ-जूआ खेलनेसे युधिष्ठिर राजा ने राज्य खोया बारह वर्ष का वनवास लिया और अपमान उठाया-

उज्जाणम्मि रमंता। तिसाभिभूया जलोत्ति णाऊण ॥
पविऊण जुणमज्जं। णठ्ठा ते जादवा तेण ॥ १२६ ॥

अर्थ–जंगल में क्रीडा करते हुये प्यास के वश होकर यादवों ने पुरानी उतरी हुई शराबको पानी समझ कर पीलिया और उसही के कारण नष्टहोगये–

मंसासणेण लुद्धो। वगरक्खो एयचक्कणयरम्मि ॥
रज्जाऊ पयभट्ठो। अयसेण मऊ गयो णयरं ॥ १२७ ॥

अर्थ–एकचक्र नाम नगरमें बकासुर राजाने मांस खाने में लुब्ध होकर राजपद भ्रष्ट किया और अपयश में मरकर नरकगया–

सव्वत्थ णिवुणवुद्धी। वेसासंगेण चारुदत्तो वि ॥
खइऊण धणं पत्तो। दुक्खं परदेसगमणं वा ॥ १२८ ॥

अर्थ–चारुदत्त सेठने जो सब प्रकार चतुर था वेश्यासंगति के कारण अपना सारा धन नष्ट किया और परदेश जाकर अनेक दुःख भोगे–

होऊण चक्कवट्टी। चउदहरयणाहिपत्त संपत्तो ॥
मरिऊण वह्मदत्तो। णरयं पारद्धिरमणेणं ॥ १२९ ॥

अर्थ–ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती राजा जो १४ रत्ननिधान था शिकार खेलने के पापसे नरकमें गया–

णासापहारदोसे-। ण दंडणं पाविऊण सिरिभूई ॥
मरिऊण अट्ठभाणे-। ण हिंडिऊ दीहसंसारे ॥ १३० ॥

अर्थ–श्रीभूतने चोरीके दोषमें दंड पाया और आर्तध्यान में मर कर संसार में बहुत बार रुलता फिरा–

होऊण खयरणाहो। वियक्खणो अद्धचक्कवट्टी वि ॥
मरिऊण गऊ णरयं। परत्थिहरणेण लंकेसो ॥ १३१ ॥

अर्थ–लंकाका राजा रावण जो विद्याधरों का सरदार तथा बहुत चतुर और अर्द्धचक्री था परस्त्री हरनेके कारण नरक में गया–

एदे महाणुभावा। दोसं एकेक विसणसेवाऊ ॥
पत्ताजो पुण सत्त वि। सेवइ वणिणज्जए किं सो ॥ १३२ ॥

अर्थ–ऐसे २ महान् पुरुष एकही एक व्यसन के सेवन करने से दुर्गतिमें गये,जो सातोंही व्यसन करतेहैं उनकी बाबत क्याकहाजावे

साकेते सेवंतो । सत्त वि विसणाइ रुद्दत्तो वि ॥
मरिऊण गऊ णरयं। भमिऊण पुण दीहसंसारे ॥ १३३॥

अर्थ—साकेत नगरमें रहनेवाला रुद्रदत्त सातों व्यसन करता था वह मरकर नरक में गया और दीर्घकाल तक संसार में भ्रमता फिरा—

सत्तण्णं विसणाणं। फलेण संसारसागरे जीवो ॥
जं पावइ बहुदुक्खं । तं संखेवेण वोच्छामि ॥ १३४ ॥

अर्थ—सात व्यसनों के फलसे संसार सागरमें जीव बहुत दुःख उठाता है, उन दुःखों का मैं संक्षेपसे वर्णन करताहूं—

अइणिठुरफरसाइ । पूयरुहिआइदुगंधाई ॥
असुहावइं च णिच्चं । णिरएसु पत्तठाणाइ ॥ १३५ ॥
तो तेसु समुप्पण्णो। आहारेऊण पोग्गले असुहे ॥
अंतोमुहूत्तकाले । पज्जत्तीऊ समाणेई ॥ १३६ ॥

अर्थ—जिसके स्थान का स्पर्श अति कठोर है, पीप और रुधिर आदिक दुर्गंध और अशुभ पदार्थ जहाँ बहते हैं ऐसे नरकमें व्यसनी पुरुष उत्पन्न होकर और अशुभ पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करके अन्तर महूर्त में पर्याप्ति को करलेताहै अर्थात् अपने शरीर को पूराकरलेता है—

उववायाउ णिवडई । पज्जत्तउ दंडती महीविठे ॥
अइकक्खडमसहंतो । सहसा उपडीदि पुण पडई॥ १३७ ॥

अर्थ—पर्याप्ति को पाकर नरकमें उत्पन्न होनेके समय लाठी के समान एक दम नरक पृथिवीपर गिरपड़ता है, नरककी धरती अति कर्कश होनेके कारण वह सह नहीं सक्ताहै और ऊपरको उछलता है और फिर नीचे गिरताहै—

जइ को वि उसणणरए। मेरुपमाणं खिवेइ लुहदंडं ॥
ण वि पावइ धरणितलं। विलयं जात्यंतराले वि ॥ १३८ ॥

अर्थ—यदि किसी गर्म नरकमें मेरु पर्वतके बराबर लोहेका गोला फेंकाजावै तो वह गोला नरककी धरती तक नहीं पहुँचेगा, नरक की गर्मीसे रास्तेही में गलजावेगा—

अह तेव वट्ट तत्तं। खिवेइ जइ को वि सीयणरयम्मि ॥

सहसा धरणिमपत्तं । सडेज्ज तं खंडखंडेहिं ॥ १३९॥

अर्थ-यदि किसीठंडे नरकमें उतनाही बड़ा तप्त हुवा लोहेका गर्म गोला फेंकाजावे तो वह नरककी धरतीपर पहुंच कर खंड २ होकर गल जावेगा-

तं तारिससीदुण्हं । खेत्तसहावेण होइ णरएसु ॥
विसहइ जावज्जीवं । विसणस्स फलेण(?)जीवो ॥ १४० ॥

अर्थ-नरकमें इतनी गर्मी सर्दी क्षेत्रके स्वभाव से है, जीव व्यसन सेवनके फलके कारण अपनी आयु पर्यंत यह सर्दी गर्मी सहता है-

तो तम्हि जायमत्ते। सहसा दट्ठूण णारया सव्वे ॥
पहरंति सत्तिमुग्गर । तिसूलणारायखग्गेहिं ॥ १४१ ॥

अर्थ-जब नरकमें जीव उत्पन्न होताहै तब उसको देखकर सब नारकी जीव शक्ति, गदा, त्रिशूल, बाण और खड्ग से मारने लगतेहैं

तो खंडियसव्वंगो । करुण पलावे रुवेइ दीणमुहो ॥
पभणंति तदो रुट्ठा । किं कंदासि रे दुरायारा ॥ १४२ ॥

अर्थ-उसके सब अंग टुकड़े २ होजाते है तब वह दयाका पात्र दीन होकर भागताहै और रोताहै, और वे नारकी उसपर क्रोधित होकर कहते हैं कि रे दुराचारी तू क्यों धाड़ मार कर रोताहै-

जोव्वणमएण मत्तो । लोहकसायेण रंजिऊं पुव्वं ॥
गुरुवयणं लंघित्ता । जूयं रमिऊं सि जम्मम्मि ॥ १४३ ॥

अर्थ-यौवन के मदमें मस्त होकर, लोभकषाय के वश होकर, और गुरुके वचनको न मानकर तूने जुआ खेला है-

तस्स फलमुदयमागय- । मलं हि रुयणेण विसह रे दुट्ठ ॥
रोवंतो वि ण छुट्टसि । कया वि पुव्वकयकम्मस्स ॥ १४४॥

अर्थ-अब उसके फलका उदय आयाहै, अरे दुष्ट ! इस फलको सह, रोनेसे क्या होताहै, पूर्व उपार्जित कर्म रोनेसे कदाचित् भी नहीं छूटसक्ते हैं—

एवं सोऊण तऊ । माणसदुक्खं विसेसमुप्पण्णं ॥
तो दुविहदुक्खदग्धो । रोसाइट्ठो इमं भणइ ॥ १४५ ॥

अर्थ-ऐसा सुनने से उसके मनमें बहुत दुःख होताहै, इस प्रकार

मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके दुःख उठाता हुवा यह क्रोध में आकर कहताहै —

जइ वा पुव्वम्मि भवे । जूयं रमियं मए मदवसेन ॥
तुझे को अवराहो । कोहवला जेण हं हणई ॥ १४६ ॥

अर्थ—यदि मैंने पूर्वजन्म में मदके वशहोकर जूआ खेलाहै तो मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है जिसके कारण तुम क्रोध में आकर मुझे मारतेहो—

एवं भणिए घित्तुण । मुधा रुहंहि अग्गिकुंडम्मि ॥
पज्जालयम्मि णिहितो । भम्भगउ अंगेसु ॥ १४७ ॥

अर्थ-ऐसा कहनेपर वेनारकी क्रोधमें आकर उसको पकड़ कर अग्निकुंड में डाल देतेहैं, वहां उसका सारा शरीर अग्निमें झुलसा जाता है—

तत्तो णिस्सरमाणं । दट्ठूण तासही अण्णकुंतेहिं ॥
पिल्लेऊया रडंतं । तत्थेव छुहंति अदयां ए ॥ १४८ ॥

अर्थ-अग्निकुंडसे बाहर निकलते को देखकर वे निर्दयी नारकी त्रास देनेके वास्ते उसको मारते हैं और रोते हुवेको अग्निकुंडमें डालदेते हैं—

हा मुयह मम परिहर । पुणो वि ण करेमि एरिसं पावं ॥
दंतेहिं अंगुलिऊं । धरेइ करुणं पुणो पुणो रुवई ॥ १४९ ॥

अर्थ-हाय मुझे छोड़दो, मुझको मत मारो, मैं यह पाप फिर नहीं करूंगा, वह करुणा के वास्ते दाँतों में उँगलीदबाता है और बार बार रोता है-

ण मुयंति तह वि पावा । पेच्छइ लीलए कुणइ जं जूवे ॥
तं पावं विलवंतो । एयहदुक्खेहि णित्थरो हं हो ॥ १५० ॥

अर्थ--तौ भी वे पापी नारकी उसको नहीं छोड़ते हैं और कहते हैं कि देख जुआ क्या २ लीला करता है, जब तक यह तेरा पाप विनाश नहीं होगा तब तक तू दुःखसे नहीं छूटेगा-

तत्तो पलायऊण । कह वि पमाएण दद्धसव्वंगो ॥
गिरिकंदम्मि सहसा । पविसइ सरणत्ति मण्णंतो ॥ १५१ ॥

अर्थ--यदि नारकियों की किसी बेपरवाही से वह शरीर झुलसा हुवा अग्निकुंड में से भाग निकलता है तो शरण ढूंढता हुवा किसी पहाडकी गुफा में जा घुसता है--

तत्थ वि पडंति उवरिं। सीलाउ ततो हि चुरिणउ संतो ॥
गलमाणरुहिरधारो । रहिऊण खणं ततो णिर्यइ ॥ १५२ ॥

अर्थ–वहांभी पत्थर गिरकर उसके सिरपर पड़ते हैं, वह पिसजाता है और उसके शरीर में से खूनकी धारा बहने लगतीहै इस कारण क्षणभर रहकर वहांसे भी निकलता है–

णेरइयाण सरीरं । कीरइ जइ तिलपमाणखंडाइ ॥
पारदरसवल्लगई । अपुरणकालम्मि ण मरेई ॥ १५३ ॥

अर्थ–नारकियों के शरीरके यदि तिलके बराबर भी टुकड़े करादिये जावें तो भी वह पारेकी समान तुरंत मिलजाते हैं, आयु पूर्ण होने से पहले नारकी नहीं मरता है–

तत्तो पलायमाणो । रुंधइ सो णारएहि दट्ठूण ॥
पाविज्जइ विलवंतो । अयसं वय कलयलं तत्तं ॥ १५४ ॥

अर्थ–वह गुफामें से निकलकर भागता हुवा नारकियों को देख कर रोनेलगता है, नारकी उसको पकड़ कर जबरदस्ती तपे हुवे लोहे का रस पिलाते हैं–

पच्छा।दिज्जइ जंतो । पीयं मज्जं महुं च पुव्वभवं ॥
तं पावफलं पत्तं । पिवेहि अयकलयलं घोरं ॥ १५५ ॥

अर्थ—वे उसको याद दिलाते हैं कि पूर्वजन्म में तूने शराब और शहद पियाहै उसका फल प्राप्त होने पर यह घोर रसपी–

कह वि तउ जइ छुट्टो । असिपत्तवणम्मि पविसई भयभीउ ॥
णिपडंति तत्थ पत्ताइं । खग्गसरिसाइ अणवरयं ॥ १५६ ॥

अर्थ—यदि किसी प्रकार उनसे छूटता है तो वह डराहुआ असिपत्र वनमें जा घुसताहै, परन्तु वहांभी तलवार की समान तेज धारवाले वृक्षों के पत्ते उसपर पड़तेहैं—

तो तहि पत्तपहरोण । छिरणकर चरण भिरणपुट्ठिसिरो ॥
पगलंतरुहिरधारो । कंदंतो सो तउ णिर्यइ ॥ १५७ ॥

अर्थ—पत्तोंके गिरने से हाथ पैर सिर और धड़ कट २ कर अलग होजाते हैं और खून की धारा बहने लगती है, तब रड़ाता हुवा वहांसेभी निकलता है–

तुरियं पलायमाणं । सहसा धरिऊण णारया कूरा ॥

छित्तूण तस्स मंसं । तुंडम्मि छुहंति तस्सेव ॥ १५८ ॥

अर्थ-तब उस भागते हुवे को क्रूर नारकी तुरंत पकड़ लेते हैं और उसका मांस नोचकर तुंडे में डालते हैं ॥

भोत्तुं अणिच्छमाणं । णियमंसं तो भणंति रे दुठ्ठा ॥
अइमिठ्ठं भणिऊण । भक्खंतो आसि जं पुव्वं ॥ १५९ ॥

अर्थ-वह अपने मांस को नहीं खाना चाहता है,तब वह कहते हैं कि रे दुष्ट तू तो पूर्वजन्म में परजीवों के मांस को मीठा कहकर खाया करता था-

त किं ते विस्सरियं । जेण मुहं कुणासि रे पराहुत्तं ॥
एवं भणिऊण कुसिं । छुहंति तुंडम्मि पज्जालियं ॥ १६० ॥

अर्थ-वह बात तूने कैसे भुलादी जो अब मुख मोड़ता है,ऐसा कहकर जलते हुवे लोहे के टुकड़े तुंडे में डालते है-

अइ तिव्वदाहसंता- । विउंति सो वेयणासमभिभीउं ॥
किमिपूइरुहिरपुण्णां । वइतरणी णई तउं विसई ॥ १६१ ॥

अर्थ-तब अति तीव्र दाह में संतापवान् वह वेदनासे व्याकुल हुवा वैतरणी नदी में घुसता है, वह नदी पीप खून और कीड़ों से भरी हुई होती है-

तत्थ वि पविठ्ठमित्ता । खारुण्हजलेण दठ्ठसव्वंगो ॥
णिस्सरइ तउं तुरिउं । हाहाकारं पकुव्वंतो ॥ १६२॥

अर्थ-उसमे घुसतेही खारी और गर्म जलसे उसका शरीर दाझा जाता है, तब तुरंतही उसमें से हाहाकार करता हुवा निकलता है-

दठ्ठूण णारया णील- । मंडवे तत्तलोहपडिमाउं ॥
आलिंगाविंति तहिं । धरिऊण बला विलवमाणं ॥ १६३ ॥

अर्थ-तब नारकी उसको देखकर पकड़ते हैं और बिलाप करते हुवे को तप्ती हुई लोहे की मूर्ति जबरदस्ती आलिंगन कराते हैं-

अगणित्ता गुरुवयणं । परत्थिवेसं च आसि सेवंतो ॥
एइह ते पावफलं । ण सहासि किं रुवासि तं जेण ॥ १६४ ॥

अर्थ-गुरुवचन को कुछ न गिणनेवाले,परस्त्री और वेश्या का

सेवन करनेवाले अब तू उन पापों का फल क्यों नहीं सहता है और क्यों रोता है-

पुव्वभवे जं कम्मं । पंचेदियवसगएण जीवेण ॥
हसमाणेण णिवध्वं । तो किं णित्थरासि रोवंतो ॥ १६५ ॥

अर्थ-पूर्वजन्म में पांचों इन्द्रियों के वश होकर जो पाप हँस २ कर किये हैं क्या वह रोनेसे दूरहोसक्ते हैं।

किकवाउगिद्धवायस । सरूव धरिऊण णारया चेव ।
पहणंति वज्जमय- तुंडातिख्खणेहिं रदेहिं दयारहिया ॥ १६६ ॥

अर्थ-वह निर्दयी नारकी मुर्गा, गिद्ध, कव्वा, आदिक का रूप धारण करके वज्र के समान कठोर चोंचों से और दांतों से उस को नोचते हैं।

धरिऊण उद्धजंघं । करकयचक्केहिं केइ फाडंति ।
मुसलेहिं मुग्गवेहिं य । चुण्णकुव्वंति परे णिरया ॥ १६७ ॥

अर्थ-अन्य नारकी उसकी जांघ पर आरा रखकर काटते हैं और मूसल मुद्गर से उसका चूर्ण करते हैं-

जिब्भाछेयण णयणा- । ण फोडणं दंतचूरणं जलणं ॥
मिलणं कुणंति खंडं- । ति केइ तिलमत्तखंडेहिं ॥ १६८ ॥

अर्थ-जीभकाटते हैं, आंख फोड़ते हैं, दांत तोड़ते है, जलाते हैं, काट २ कर तिलके बराबर टुकड़े करते हैं और फिर मिलाते हैं।

अण्णे कलंववालुय- । थलम्मि तत्तम्मि पाडिऊण पुणो ॥
लोटाविंति रडंतं । णिहणंति घसंति भूमीए ॥ १६९ ॥

अर्थ-कोई नारकी उसको मोटे २ और गरम २ बालू रेतपर डालते हैं, रोतेहुवे को धरतीपर लुड़काते हैं, मारते है, और धरती पर घसीटते हैं-

असुरा वि कुरा पावा । तत्थ वि गंतूण पुव्ववे राइं ॥
सुमराविण तउ । जुध्दं लावंति अण्णोण्णं ॥ १७० ॥

अर्थ-क्रूर और पापी असुर जातिके देव भी वहां जाकर नारकियोंको पूर्व वैर याद दिलाकर आपस में लड़वाते हैं -

सत्तेय अहोलोए । पुढवीऊ तत्थ सयसहस्साइं ॥
तिरियाणी चुलसीसइ । सेढिदपइण्णयाइ हवे ॥ १७१ ॥

अर्थ-नरक की सात भूमि हैं इनमें श्रेणीबद्ध, इंद्रक, और प्रकीर्णक इसप्रकार तीन जाति के बिल अर्थात् नारकियों के स्थान हैं, उन सब बिलों की गिणती ८४ लाख हैं-

रयणप्पह सक्करपह । वालुप्पह पंकधूमतमभासा ॥
तमतमपहपुढवीणं । जाणह अणुवट्ठणामाई ॥ १७२ ॥

अर्थ-नरक की सातों पृथिवीयों के यह नाम हैं, रत्नप्रभा शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, और तमस्तमप्रभा, इनके नामों के अर्थ से ही उनकी दशा जान लो-

पढमाइ जमुक्कस्सं । विदियाइ सुसाहि जहएणं तं ॥
तिय सत्त दस य सत्तर । स दु सहि बाईस तेतीसं ॥ १७३ ॥

अर्थ-पहले नरक में जो उत्कृष्ट आयु है वह दूसरे नरक में जघन्य आयु है, तीन, सात, दस, सतरा, बाईस और तेंतीस-

सायरसंखा एसा । कमेण विदियाइ जाण पुढवीसु ॥
एककस्स साउमाणं । णिद्दिठं जिणवरिंदेहिं ॥ १७४॥

अर्थ-इतनी सागर संख्या उत्कृष्ट आयु की दूसरे नरक से सिलसिलेवार है और पहले नरक में एक सागर की आयु है, ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है-

एतियपमाणकालं । सारीरं माणसं वहुपयारं ॥
दुक्खं सहइ तिव्वं । विसणस्स फलेणिमो जीवो ॥ १७५ ॥

अर्थ-व्यसन सेवन के फलसे इतने कालतक जीव नरक में मानसीक और शारीरक बहुत प्रकार के तीव्र दुःख भोगता है-

तिरियगईए वि तहा । थावरकायेसु वहुहयारेसु ॥
अत्थइ अणंतकालं । हिंडंतो जोणिलक्खेसु ॥ १७६ ॥

अर्थ-तिर्यंच गतिमें और बहुत प्रकार की स्थावर काय में भी लाखों योनियों में भ्रमताहुवा अनन्त काल रहता है-

कहमवि णिस्सरिऊणं । तत्तो वियलिंदियेसु संभवइ ॥
तत्थ वि किलिस्समाणो । कालमसंखिज्जइं वसई ॥ १७७ ॥

अर्थ-अस्थावरकाय में से किसी कारण से निकलकर यदि विकलेन्द्रिय अर्थात् दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय वा चौइन्द्रिय होता है तो वहां भी क्लेश उठाताहुवा असंख्यात कालतक भ्रमतारहता है-

तो खिल्लविजोएण । कह वि पंचिंदिएसु उववण्णो ॥

तत्थ वि असंखकालं । जोणिसहस्सेसु परिभमइ ॥ १७८ ॥

अर्थ-वहां से छूटकर यदि किसी कारण से पंचेंद्रिय होता है तो वहांभी असंख्यात कालतक हज़ारों योनियों में भ्रमतारहताहै-

छेयण भेयण तासण । णिलंयणं जहा तहा दमणं ॥
णिखलण मलणं दलणं । पउलण उ ककत्तणं चेव ॥ १७९ ॥
बंधण भारारोवण । लंछणपाणस्स रोहणं सहणं ॥
सीउण्ह भुक्खतह्णं । हियाण तह पिल्लयविउंयं ॥ १८० ॥

अर्थ-छेदन, भेदन, त्रास, वशमें रहना, किसी प्रकार दबना, मलना, दलना, जलना, कतरना, बंधना, बोझलदना, खानापीना रुकना, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मनकी चिन्ता और बालक का वियोग—

इच्चेवमाइ बहुलं । दुक्खं पाउणइ तिरियजोणीए ॥
विसणस्स फलेण जदो । विसणं परिवज्जए तह्मा ॥ १८१ ॥

अर्थ-तिर्यंच योनि में भी व्यसन सेवन के फल से इसप्रकार बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं, इसकारण व्यसनों का त्याग करना चाहिये -

मणुयत्ते विय जीवा । दुक्खइ पावंति बहुवियप्पेहिं ॥
इट्ठाणिट्ठेसु सया । वियोयसंजोयजं तिव्वं ॥ १८२ ॥

अर्थ-मनुष्य जन्म में भी इष्ट अनिष्ट के संयोग वियोग से जीव के चित्त को अनेक दुःख होते हैं-

उप्पण्णपढमसमय- । ह्मि केइ जणणीइ छंड्डिउ संता ॥
कारणवसञ्भउण्ह- । भूखत्तण्हाउरो मरई ॥ १८३ ॥

अर्थ-कोई पैदा होते ही माता के मरने से सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास की अनेक तकलीफ़ उठाकर मर जाता है-

बालत्तणे वि जीवो । मायापियरेहि कोवि परिहीणो ॥
उच्छिट्ठं भक्खंतो । जीवइ दुक्खेण परगेहे ॥ १८४ ॥

अर्थ-कोई बालक अवस्था ही में मा बाप के न रहने से पराये घर में झूठे टुकड़े खाकर दुःख के साथ जीता है-

पुव्वं दाणं दाऊ- । ण को वि सधणो जणस्स जहजोयं ॥
पच्छा सो धणरहिउ । ण लहइ कूरं पि जायंते ॥ १८५ ॥

अर्थ—कोई धनवान् अपने धन को यथायोग्य दान में देता है पीछे यदि वह निर्धन होजाता है तो उसको मांगने पर भी एक मुट्ठी अन्न नहीं मिलता है—

अएणो उ पावरोएण । वाहिउण वरवज्ज देसम्मि ॥
अच्छइ सहायरहिउे । ण लहइ सघरे वि चिठ्ठउं ॥ १८६ ॥

अर्थ—कोई पाप के उदय से किसी व्याधि के आने पर अपना देश छोड़ता है और सहायरहित होजाता है, इसप्रकार अपने घर में भी ठिकाणा नहीं पाता है—

तिसउे वि भुक्खिउे हं । पुत्ता मे देहि पाणमसणं च ॥
एवं कुव्वंतस्स वि । ण को वि वयणं च सद्दहदि॥ १८७ ॥

अर्थ—मैं भूखाहूं, मैं प्यासाहूं, बच्चा मुझको अन्न पानीदे, उसके ऐसा कहनेपर भी उसकी बातका कोई विश्वास नहीं करता है—

तो रोयसोयभरिउे । सव्वेसिं सव्वहियाउ दाऊण ॥
दुक्खेख मरइ पच्छा । धिगत्थु मणुयत्तणमसारं ॥ १८८ ॥

अर्थ—सारी उम्र सबको दुःख देताहुवा और रोग शोक उठाता हुवा जो मरता है उसके असार मानुष जीवन को धिक्कार है—

अएणाणि एवमाई- । णि जाणि दुक्खाणि मणुयलोयम्मि ॥
दीसंति ताणि पावइ । विसणस्स फलेणिमो जीवो ॥ १८९ ॥

अर्थ—इस संसार में अन्य मनुष्यों को अन्य भी अनेक प्रकार के दुःख देखेजाते हैं, उन दुःखों को जीव व्यसनों के फल से उत्पन्न करता है—

किंचुवसमेण पाव- । स्स कहवि देवत्तणं वि संपत्तो ॥
तत्थ वि पावइ दुक्खं । विसणज्जियकम्मपागेण ॥ १९० ॥

अर्थ—यदि कुछ पाप के उपशम होने से किसी प्रकार देवगति भी प्राप्तहोजावै तो वहां भी व्यसन सेवन के पाप के फलसे दुःख ही उठाता है—

दट्ठूण महद्धीणं । देवाणं ठियज्जरिद्धिमाहप्पं ॥
अप्पाढिउे विसूरइ । माणसदुक्खेण डज्झंतो ॥ १९१ ॥

अर्थ—अधिक ऋद्धिवाले देवोंकी स्थिति, जाति, और ऋद्धि के माहात्म्य को देखकर वह अल्प स्थितिवाला मानसिक दुःख से दग्ध होकर रोता है—

हा मणुयभेव उप्प-। ज्जिऊण तवसंजमं वि लध्दूण ॥
मायाएजविकप्पं। देवदुग्गइ तेण संपत्ता ॥ १९२ ॥

अर्थ-हाय हाय मनुष्य जन्ममेंभी उत्पन्न होकर और तप संयमकी शक्ति पाकर भी मायाचारी विकल्पों को करता है और उससे खोटे देवोंकी गति पाताहै-

कंदप्पाकिल्विसासुर-। वाहणसमूहदेवजाईसु ॥
जावंजीवं णिवसइ। विसहंतो माणसं दुक्खं ॥ १९३ ॥

अर्थ-कन्दर्प, किल्विष, असुर, बाहन आदिक खोटे देवोंकी जाति में मानासिक दुःख उठाता हुवा आयु व्यतीत करताहै-

छम्मासाऊसेसे। वच्छाहरणाइ हुंति मलिणाई ॥
णाऊण चवणकालं। अहियरं रुयइ सोगेण ॥ १९४ ॥

अर्थ-जब आयुके छै महीने बाकी रहजाते हैं तब उसके वस्त्र और आभरण मैले होजाते हैं, इस से वह जानलेता है कि मेरा मरण निकट आगया और शोक करके अधिक रोताहै-

हा हा कहं णिलोए। किमिकुलभरियम्मि अइदुगंधम्मि ॥
णवमासं पुइरुहिरा--। उल्लम्मि गब्भम्मि वसियव्वं ॥ १९५ ॥

अर्थ-हाय हाय मनुष्य किस प्रकार नौ महीने गर्भमें रहता है, वह गर्भ अनेक प्रकार के कीड़ों से भरा हुवा, दुर्गंधमय और पीप तथा रुधिर से व्याप्त होता है-

किं करमि कस्स वच्चामि। कस्स साहेमि जामि कं सरणं ॥
ण वि अत्थि अत्थ वंधू। जो मे धारेइ णिपडंतं ॥ १९६ ॥

अर्थ-मैं क्याकरूं किस प्रकार बचूं. क्या उपाय करूं, किसकी शरण जाऊं, ऐसा कोई मित्र नहीं है जो मुझको यहां से गिरते हुवे को बचावै-

वज्जाउहो महप्पा। ऐरावणवाहणो सुरिंदो वि ॥
जावंजीवं सो से-। विउ वि ण उद्धरे मं तहावि ॥ १९७ ॥

अर्थ-बज्र आयुधवान, महात्मा, ऐरावण हाथी की सवारी वाला और सुरेन्द्र भी जिसकी मैंने सारी उम्र सेवा की है मुझको यहां रखनेकी शक्ति नहीं रखता हैं-

जइ मे होई मरणं। ता होज्जइ किं तु मे समुप्पत्ती ॥

एगिंदिएसु जायज ! णो मणुसेसु कइया वि ॥ १९८ ॥

अर्थ-यदि मेरा मरण होगा ही तो मैं एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न न होऊं, मनुष्य होजाऊं-

अह वा किं कुणइ पुरा-। जियम्मि उदयागयम्मि कम्मम्मि ॥

सक्को वि जदो ण तरइ। अप्पाणं रक्खिउं काले ॥ १९९ ॥

अर्थ-अथवा अब क्या कियाजावै उपार्जन किये कर्मों के उदय आनेपर उस कालमें,इन्द्र भी अपनी रक्षा नहीं करसक्ता है-

एवं बहुप्पयारं। सरणविरहिउ खरं विलवमाणो ॥

एइंदिएसु जायइ। मरिऊण तउ विवागेण ॥ २०० ॥

अर्थ-इस प्रकार शरण रहित वह देव अनेक प्रकार बहुत २ बिलाप करता हुवा मर कर उस बिलाप के फलसे एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होता है-

तत्थ वि अणंतकालं। किलिस्समाणो सहइ बहुदुक्खं ॥

मिच्छत्तसंसयमइ जीवो। किं किं दुक्खं ण पाविजइ ॥ २०१ ॥

अर्थ-वहां भी अनन्तकाल तक क्लेशित होता हुवा बहुतदुःख सहता है, मिथ्यात्व और संशय में पडा हुवा जीव क्या २ दुःख नहीं उठाता है-

पिच्छइ दिव्वे भोए। जीवो भोत्तूण देवलोयम्मि ॥

एइंदिएसु जायइ। धिगत्थु संसारवासस्स ॥ २०२ ॥

अर्थ-देखो स्वर्ग में दिव्य भोग भोगता हुवा यह जीव एकेन्द्रिय जाति में जन्म लेताहै, ऐसे संसारवासको धिक्कार है-

एवं बहुप्पयारं। दुक्खं संसारसायरे घोरे ॥

जीवो सरणविरहिउ। विसणस्स फलेण पाउणई॥ २०३ ॥

अर्थ-शरण रहित जीव इस घोर संसार सागरमें इस प्रकार व्यसन सेवनके फलसे बहुत दुःख उठाता है-

पंचुंबरसहियाइं। परिहरई सत्तविसणाइं ॥

सम्मत्तविसुद्धमई। सो दंसणसावयो भणिउ॥ २०४ ॥

अर्थ-जो कोई पंचउदम्बर सहित सात व्यसनों का त्याग करता है उस शुद्ध सम्यक्ती को दर्शन श्रावक कहते हैं-

एवं दंसणसावय-। ठाणं पढमं समासउ भणियं ॥

वयसावयगुणठाणं। एत्तो विदियं पवक्खामि ॥ २०५ ॥

अर्थ—इस प्रकार मैंने श्रावककी पहली दर्शन प्रतिमाका संक्षेप रूप वर्णन किया अब दूसरी प्रतिमा का वर्णन करता हूं—

दूसरी व्रतप्रतिमा।

पंचेव अणुव्वयाइं। गुणव्वयांइ होंति पुण तिण्णि॥
सिक्खावयाणि चत्तारि। जाइए विदियम्मि ठाणम्मि॥ २०६॥

अर्थ—पांच अणुव्रत, तीनगुण व्रत, चार शिक्षाव्रत को जो कोई पालता है वह दूसरी प्रतिमाका धारी है—

पाणाइवायविरई। सच्चमदत्तस्स वज्जणं चेव॥
थूलयड वभचेरं। इच्छाए गंथपरिमाणं॥ २०७॥

अर्थ—जीवहिंसा, झूठ, चोरी और अब्रह्म का स्थूलरूप त्याग और इच्छानुसार परिग्रह का परिमाण करना यह पांच अनुव्रत हैं।

जे तसकाया जीवा। पुव्वुद्दिठा ण हिंसियव्वा ते।
एइंदिया वि णिक्का- । रणेण पढमं वयं थूलं॥ २०८॥

अर्थ—आंखों से दीखते हुवे त्रसजीवको नहीं मारना और एकेन्द्रियजीव की भी विना प्रयोजन हिंसा नहीं करना स्थूल अहिंसा व्रत है।

अलियं ण जंपणीयं। पाणिवहकरं तु सच्चवयणं पि।
रायेण य दोसेण य। णेयं विदियं वयं थूलं॥ २०९॥

अर्थ—राग वा द्वेष से अनीति वचन नहीं बोलना और जिस से किसी जीव की हिंसा होती हो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना इसको स्थूल सत्यव्रत जानों।

पुरगामपट्टणाइसु। पडियं णठं च णिहियवीसरियं॥
परदव्वमगिण्हंत- । स्स होय थूलवयं तिदियं॥ २१०॥

अर्थ—नगर, ग्राम, पट्टन आदिमें पड़ा हुवा, खोया हुवा, गिर पड़ा हुवा, भूला हुवा, पराया द्रव्य नहीं लेना स्थूल अचौर्यव्रत है॥

पव्वेसु इत्थिसेवा। अणंगकीडा सया विवज्जंतो॥
थूलयड वंभयारी। जिणेहि भणिऊ पवयणम्मि॥ २११॥

अर्थ—पर्वके दिन सर्वथा स्त्रीका त्याग और अनङ्ग क्रीड़ाका सदा त्याग ऐसेको जिनेन्द्रने शास्त्र में स्थूल ब्रह्मचारी कहा है—

जं परिमाणं कीरइ। धणधण्णहिरण्णकंचणाईणं॥

तं जाण पंचमवयं। णिद्दिठ्ठमुवासयम्भयणे॥ २१२॥

अर्थ-जो कोई धन, धान्य, रत्न, और स्वर्ण आदिका परिमाण करताहै उसको परिग्रह परिमाण व्रती जानो, उपासकाध्यान शास्त्र में ऐसा कहाहै-

पुव्वुत्तरदक्खिणप-। च्छिमासु काऊण जोयणपमाणं॥
परदो गमणणियत्ती। दिसिगुणवयं पढमं॥ २११॥

अर्थ-पूर्व, उत्तर,दक्षिण और पश्चिम दिशा में योजन का प्रमाण करके उससे बाहर जानेका त्याग करना प्रथम गुण व्रत अर्थात् दिग्व्रत है-

वयभंगकारणंहो-। इ जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण॥
कीरइ गमणणियत्ती। तं जाण गुणव्वयं विदियं॥ २१४॥

अर्थ-जिसदेश में व्रतके भंग होनेका कारण होताहै उस देशमें जानेका नियम रूप त्याग करना दूसरा गुण व्रत अर्थात् देशव्रतहै-

अयदंडपासाविक्कय। कूडतुलामाणकूरसत्ताणं॥
जं संगहो ण कीरइ। तं जाण गुणव्वयं तिदियं॥ २१९॥

अर्थ-लोहे का टुकड़ा तलवार आदिक, लाठी, फांस अर्थात् मेख़ आदिक इनका बेचना और झूठी तराजू, झूठेबाट, तथा क्रूरजानवर रखना तीसरा गुणव्रत अर्थात् अनर्थ दंड त्यागव्रतहै-

जं परिमाणं कीरइ। मंडणतंवोलगंधपुप्फाणं॥
तं भोयविरइ भणियं। पढमं सिक्खावयं सुत्ते॥ २१६॥

अर्थ-शरीर को शोभा देनेवाले पदार्थ, तांबूल, सुगंध और पुष्प आदिकका परिमाण करना भोग विरति नामा पहला शिक्षाव्रत है-

सगसत्तीए महिला-। वत्थाहरणाण जं तु परिमाणं॥
तं परिभोयणिवुत्ती। विदियं सिक्खावयं जाणे॥२१७॥

अर्थ-अपनी शक्तिके अनुसार स्त्री, वस्त्र, आभरण आदिक का परिमाण करना उपभोगनिवृत्ति नामका दूसरा शिक्षाव्रतहै-

अतिहिस्स संविभागो। तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं॥
तत्थ वि पंचाहियारा। णेया सुत्ताणुमग्गेण॥ २१८॥

अर्थ-अतिथि संविभाग अर्थात् अतिथि को भोजनादिक दान

देना तीसरा शिक्षाव्रत जानो, इसके पांच अधिकार हैं जो सूत्र के अनुसार जानने चाहियें-

पत्तंतर यादारो । दाणविहाणं तहेव दायव्वं ॥
दाणस्स फलं णेया । पंच हियारा कमेणेदे ॥ २१९ ॥

अर्थ-पात्रका भेद, दाता, दानविधि, देनेयोग्य पदार्थ, और दानका फल यह पांच अधिकार क्रमसे जानने चाहियें-

तिविहं मुणेह पत्तं । उत्तममज्झमजहण्णभेएण ॥
वयणियमसंजमधरो । उत्तमपत्तं हवे साहू ॥ २२० ॥

अर्थ-उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन प्रकार के पात्र हैं, व्रत नियम और संयमका करनेवाला साधु उत्तम पात्रहै-

एयारसठाणठिया । मज्झमपत्तं खुसावया भणिया ॥
अविरयसम्माइट्ठी । जहण्णपत्तं मुणेयव्वं ॥ २२१ ॥

अर्थ उत्तम श्रावक मध्यम पात्र हैं इसके ग्यारह दर्जे अर्थात् प्रतिमा हैं, और अविरति सम्यक्दृष्टिको जघन्य पात्र जानना चाहिये—

वयतवसीलसमग्गो । सम्मत्तविवज्जिउ कुपत्तं तु ॥
सम्मत्तसीलवयवज्जिउ । अपत्तं जो हवे णियमा ॥ २२२ ॥

अर्थ-जो कोई व्रत, तप,और शील पालता है परन्तु सम्यक्त्व रहितहै वह कुपात्र है, और जो सम्यक्त्व,शील और व्रत रहितहै वह अपात्र है—

सद्धा भगती तुट्ठी । विण्णा ण मलुद्धया खमा सत्ती ॥
जत्थेदे सत्तगुणा । तं दायारं पसंसंति ॥ २२३ ॥

अर्थ-श्रद्धा, भक्ति, संतोष, विज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, और शक्ति यह सातगुण जिस दातामें हैं वह प्रशंसा योग्य है-

पडिगहणमुच्चठाणं । पादोदयमच्चणं च पणमं च ॥
मणवयणकायसुद्धी । एसणसुद्धी य णवविहं पुण्णं ॥ २२४ ॥

अर्थ-पात्रको बुलाना, उच्चस्थान देना अर्थात् ऊंचे बिठाना, पैरधोना, पूजा करना, नमस्कार करना, मनशुद्धि, वचन शुद्धि, कायाशुद्धि, और शुद्ध आहार देना यह नौ विधि पुण्य प्राप्त करानेवाली हैं-

पत्तं णियघरदारे । दट्ठूणाणिच्छं वा विमागित्ता ॥
पडिगहणं कायव्वं । णमोत्थु ठाहुत्ति भणिऊण ॥ २२५ ॥
णेत्तूण णियघगेहं । णिखज्जाणु तह उच्चठाम्मि ॥
ठविऊण तहा चलणा- । ण धोवणं होय कायव्वं ॥ २२६ ॥
वाउदयं पवित्तं । सिरम्मि काऊण अच्चणं कुच्चा ॥
गंधक्खयकुसुमणेव- । ज्जदीवधूवेहि फलेहिं ॥ २२७ ॥
पुप्फंजलिं खिवित्ता । पयपुरउ वंदणं तउ कुज्जा ॥
चइऊण अट्टरुद्दे । मणसुद्धी होय कायव्वा ॥ २२८ ॥
णिट्ठुरकक्कसवयणा- । इवज्जणं तं वियाण वचसुद्धिं ॥
सव्वत्थसंपुडंग- । स्स होइ तह कायसुद्धीए ॥ २२९ ॥
णहजंतुरोमअत्थी । कणकुडयमंसरुहिरचम्माइ ॥
कंदफलमूलाविया- । छण्ण मला चउद्दसा होंति ॥ २३० ॥
चउदसमलपरिसुद्धं । जं दाणं सोहिऊण जइणाइ ॥
संजामिजणस्स दिज्जइ । सा णेया एसणासुद्धी ॥ २३१ ॥
दाणसमयम्मि एवं । सुत्तणुसारेण णवविहाणाणि ॥
भणियाणि मया एहिं । दायव्वं वण्णइस्सामि ॥ २३२ ॥

अर्थ—पात्रको अपने घरके द्वारपर देखकर अथवा अन्यत्र से बुलाकर नमोऽस्तु नमोऽस्तु तिष्ठ तिष्ठ कहकर प्रतिग्रहण करना चाहिये —

तब अपने घरमें लाकर वहां ऊंचे स्थान पर बिठाकर उसके पैर धोने चाहियें—

पैरके धोवनको सिरपर लगाकर गन्ध, अक्षत, फूल, नैवेद्य, दीप, धूप और फलसे उसकी पूजा करे—

पुष्पकी अंजुली उसपर बरसा कर उसके पैरों की वंदनाकरे और आर्तरौद्र ध्यान को छोड़कर मनको शुद्ध करे—निष्ठुर, कर्कश आदिक बचन नहीं बोलना इसको वचन शुद्धि जानो, अपनी कायाको सब तरफसे संकोच करना कायशुद्धिहै—नाखून, जीव जंतु, केश, हड्डी, मल, मूत्र, मांस, रुधिर, चर्म, कंद, फल, मूल बीज और अशुद्ध आहार यह १४ मल हैं—१४ प्रकारके मलसे रहित यत्नसे शोधा हुवा जो दान संयमी मुनिको दिया जाताहै उसको एषणा शुद्धि जानो—

दानके समय की यह विधि सूत्रके अनुसार मैंने कहीं अबमैं वर्णन करता हूं कि देने योग्य क्या है—

आहारोसहसत्था. । भयभेउ जं चउव्विहं दाणं ॥
तं उच्चइ दायव्वं । णायव्वमुवासयाज्झयणे ॥ २११ ॥

अर्थ–आहार, औषधि, शास्त्र, और अभय यह चार प्रकार का दान देने योग्यहै, इनका स्वरूप उपासका ध्ययन शास्त्रसे जानना चाहिये–

असणं पाणं खाइयं । साइयमिदि चउविहो वराहारो ॥
पुव्वुत्तणवविहाणे- । हिं तिविहपत्तस्स दायव्वं ॥२३४॥

अर्थ–भोजन, पीने योग्य, खाने योग्य, स्वादलेने योग्य यह चार प्रकारका आहारहै, यह आहार विधिसे तीन प्रकारके साधु को देना चाहिये–

अइवुड्ढबालमूयं– । धवहिरदेसंतरीयरोइहं ॥
जहजोग्गं दायव्वं । करुणादाणेत्ति भणिऊण ॥ २३१ ॥

अर्थ–बहुत बूढा, बालक, गूंगा, अन्धा, बहिरा, परदेशी, रोगी इनको यथा योग्य देना चाहिये, इसको करुणादान कहा है–

उपवासवाहिपरिसम- । किलेसपरिपीडियं मुणेऊण ॥
पच्छं सरीरजोग्गं । भेसहदाणं पि दायव्वं ॥ २३६ ॥

अर्थ–उपवास, व्याधि, परिश्रम, और क्लेश से किसी जीव को पीडित देखकर उसके शरीर के योग्य पथ्य और औषधि आदिदेना चाहिये–

आवस्ससच्छाइ लिहा- । विऊण दीज्जंति जं जहाजोग्गं ॥
तं जाण सत्थदाणं । जिणवयणज्झावणं च तहा ॥२१७॥

अर्थ–जिस शास्त्रकी जरूरत हो उसको लिखवाकर यथा योग्य देना वा जैन सिद्धान्त पढ़ाना सिखाना इसकोशास्त्रदानजानो–

जं कीरइ परक्खा । णिच्चं मरणभयभीरुजीवाणं ॥
तं दाणं सिहासण– । संठियं सव्वदाणाणं ॥ २१८ ॥

अर्थ–मरण भयसे भयभीत जीवोंकी जो कोई नित्य रक्षा करता है उसके सब दानोंको यह अभयदान सिंहासन पर बिठा देता है–

अएणाणिणो वि जह्मा । कज्जं ण कुणंति णिप्फलारंभं ॥
तह्मा दाणस्स फलं । समासदो वएणइस्सामि ॥ २३९ ॥

अर्थ–अज्ञानी भी वह कार्य नहीं करतेहैं जिसमें कुछ लाभ न हो इसकारण दान का फल संक्षेप से वर्णन करता हूं–

जह उत्तम्मि खित्ते । पइणमएणं सुवहुफलं होदि ॥
तह दाणफलं णेयं । दिएणं तिविहस्स पत्तस्स ॥ २४० ॥

अर्थ–जैसे उत्तम खेतमें बीज बखेरने से बहुत फल प्राप्त होताहै इसही रीतिसे तीन प्रकारके पात्रको दान देनेका फल समझो–

जह मज्झमम्मि खित्ते । अप्पफलं होइ वावियं वीयं ॥
मज्झमफलं विजाणह । कुपत्तादिएणं तहा दाणं ॥ २४१ ॥

अर्थ–जैसे मध्यम खेतमें बीज डालने से कमती फल होता है इसही प्रकार कुपात्रको दान देने से मध्यम फल होताहै–

जह ऊसरम्मि खित्ते । पइएणं वीयं ण किं पि रुहेइ ॥
फलवज्जियं वियाणह । अपत्तादिएणं तहा दाणं ॥ २४२ ॥

अर्थ–जैसे ऊसर खेतमें बीज बोनेसे कुछ नहीं उगता है इसही प्रकार अपात्र को दान देनेसे यह समझो कि कुछ भी फल नहीं होता है–

कह्मि अपत्ताविसेसे । दिएणं दानं दुहावहं होइ ॥
जह विसहरस्स दिएणं । तिव्वाविसं जायए खीरं ॥ २४३ ॥

अर्थ–जैसे सांपको दूध पिलाने से वह दूध ज़हर होजाता है इसही प्रकार कोई ऐसाभी अपात्र होताहै जिसको देनेसे दुःख ही प्राप्त होताहै–

मेहाविऊण सेसा । सामएणपरूवणा मए उत्ता ॥
इएहेय भणामि फलं । समासउं मंदवुद्धीणं ॥ २४४ ॥

अर्थ–बुद्धिमानों के समझने के अर्थ मैंने साधारण रूप दान का फल वर्णन किया, अब मन्दबुद्धि जीवों को समझाने के वास्ते संक्षेपसे वर्णन करता हूं–

मिच्छादिट्ठी भद्दो । दाणं जो देइ उत्तमे पत्ते ॥
तस्स फलेणुववज्जइ । सो उत्तमभोयभूमीसु ॥ २४५ ॥

अर्थ–जो कोई भद्र पुरुष मिथ्यादृष्टि भी है और उत्तम पात्र

को दान देताहै तो उसके फलसे उत्तम भोग भूमि में जन्मलेताहै–

जो मज्झमम्मि पत्तं- । मि देइ दाणं खु वामदिट्ठी वि ॥
सो मज्झमासु जीवो । उप्पज्जइ भोयभूमीसु ॥ २४६ ॥

अर्थ–जो कोई मिथ्यादृष्टि होकर भी मध्यम पात्रको दानदेता है वह मध्यम भोग भूमि में जन्मलेताहै–

जो पुण जहण्णपत्तं- । मि देइ दाणं तहाविहो णरो ॥
जहए फलेण जहण्ण- । सु भोयभूमीसु सो जीवो ॥ २४७ ॥

अर्थ–जो कोई विधि अनुसार जघन्यपात्र को दान देताहै वह इस दानके फलसे जघन्य भोग भूमिमें जाता है–

जइए कुपत्तदाणे । णवाम दिट्ठी कुभोयम् मीसु ॥
अणुमोयणेण तिरिया । वि उत्तमठाणं जहाजोग्गं ॥ २४८ ॥

अर्थ–जो कोई मिथ्या दृष्टि कुपात्र को दान देवै तो कुभोग भूमिमें जाताहै और दानकी अनुमोदना करनेसे यथा योग्य तिर्यंचकी उत्तम पर्याय में भी जन्मलेता है—

वध्दाउगा सुदिट्ठी । मणुया अणुमोयणेण तिरिया वि ॥
णियमेणुववज्जंति य । ते उत्तमभोगभूमीसु ॥ २४९ ॥

अर्थ–यदि भोग भूमिकी आयु बाँधकर कोई सम्यक् दृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच दानकी अनुमोदना करता है तो नियम रूप वह उत्तम भोगभूमिमें जन्मलेता है—

तत्थ वि दहप्पयारा । कप्पदुमा दिंति उत्तमे भोए ॥
खेत्तसहोवेण सया । पुव्वज्जियपुण्णसहियाणं ॥ २५० ॥

अर्थ–भोग भूमिमें दश प्रकारके कल्पवृक्ष हैं जो क्षेत्रके स्वभावसे पुण्यवान्जीवों को उत्तम २ भोगदेते हैं–

वज्जंगतूरभूसण- । जोइसगिहभायणंगमालंगा ॥
भोयणवत्थपदीवं- । गा एदे सुरतरु दसहा ॥ २५१ ॥

अर्थ–मद्यांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग मालांग, भोजनांग, वस्त्रांग, प्रदीपांग, यह दशप्रकारके कल्पवृक्ष हैं–

अइसरसमइसुगंधं । दिट्ठं चिय जं जणेहि अहिलासं ॥
इंदियवलपुट्ठियरं । मज्जंगा पाणयं दिंति ॥ २५२ ॥

अर्थ–रुचिकर और सुगंधित जिसके देखने से अभिलाषा पैदाहो

और इन्द्रिय और बलकी पुष्टि करनेवाली हो ऐसी पीनेकी वस्तु मद्यांग वृक्ष से मिलती है-

तयवितयघणसुखिरं । वाजितरं पायवा दिंति ॥
वरमकुटमालाइय । आभरणा भूसणदुमा वि । २५३ ॥

अर्थ-तत, वितत, घन, सुषिर आदिक बाजे जिससे प्राप्त हों वह तूर्यांग वृक्ष है और उत्तम मुकट माला आदिक आभरण और भूषण देनेवाला भूषणांग वृक्ष है-

ससिसूरपयासाऊ । अहियपयासं कुणंति जोईय ॥
दुम्मा णाणविहण्णा । साए दिंति सया गिहदुमा दिव्वा ॥ २५४ ॥

अर्थ-ज्योतिरंग वृक्ष चांद सूर्य से भी अधिक प्रकाश करताहै और गृहांग वृक्ष नाना प्रकारके मकान देता है-

कचोलकलसथाला । इयाइ भायदुमा पयच्छंति ॥
उज्जोयं दीवदुमा । कुणंति गेहस्स मज्झम्मि ॥ २५५ ॥

अर्थ-बाटी, कलशा, थाली आदिक बर्तन देनेवाला भाजनांग वृक्षहै और दीपांग वृक्ष घरमें उजाला करताहै-

वरवट्टचीणखोमा । इयाइ वत्थाइ दिंति वत्थदुमा ॥
वरचउविहमाहारं । भोयणरुक्खा पयच्छंति ॥ २५६ ॥

अर्थ-उत्तम पट तथा रेशमी चीनी आदिक वस्त्र वस्त्रांग वृक्ष देता है और चार प्रकारका आहार भोजनांग वृक्ष देताहै-

वरबहुलपरिमलाभो । यमोइयासामुहाउ मालाउ ॥
मालादुमा पयच्छं । ति विविहकुसुमेहिं रइयाउ ॥ २५७ ॥

अर्थ-नाना प्रकार के फूलोंसे बनाई हुई उत्कृष्ट और बहुत सुगंधवाली माला जो चित्तको खुश करनेवाली हो मालांग वृक्ष देता है-

उक्किट्ठभोयभूमी । सु जे णरा उदयसुज्जसमतेया ॥
छधणुसहस्सुत्तुंगा । हुंति तिपल्लाउगा सव्वे ॥ २५८ ॥

अर्थ-उत्तम भोग भूमिका मनुष्य उदय होते हुवे सूरज के समान तेजवाला, छै हजार धनुष ऊंचा और तीन पल्यकी आयु वाला होता है-

देहस्सुच्चत्तम । ज्झमासु चत्तारि धणुसहस्साइं ॥
पल्लाणि दूणियाऊ । पुण्णेंदुसमप्पहा पुरिसा ॥ २५९ ॥

अर्थ-मध्यम भोग भूमिका मनुष्य चार हज़ार धनुष ऊंचा, दो पल्यकी आयु, और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रभावाला होता है-

दोधणुसहस्सुत्तुंगा । मणुया पल्लाउगा जहण्णासु ॥
उत्तमकंचणवण्णा । हवंति पुण्णाणु भावेण ॥ २६० ॥

अर्थ-जघन्यभोग भूमिका मनुष्य दोहजार धनुष ऊंचा, एक पल्यकी आयुवाला और उत्तम स्वर्ण के समान वर्णवाला पुण्य के प्रभाव से होता है-

जो पुण कुभोयभूमी- । सु सक्करासमिट्टियाहारा ॥
फलपुप्फहरा केई । तत्थ पल्लाउगा सव्वे ॥ २६१ ॥

अर्थ-कुभोग भूमिके मनुष्य शक्करके समान मीठा आहार करने वाले वा कोई २ फूल फलका आहार करनेवाले होते हैं और सब एक पल्यकी आयुवाले होते हैं-

जायंति जुयलजुयला । उणवण्णदिणेहि जोवणं तेहिं ॥
समचउरससंठाणा । वज्जवज्जसरीरसंहणणा ॥ २६२ ॥
वाहत्तरिकलसहिया । चउसट्ठिगुणगुणणया तणुकसाया ॥
वत्तीसलक्खणहरा । उज्जमसीला विणेया य ॥२६३ ॥
णवमासाउगि सेसे । गब्भं धरिऊण सूइसमयह्मि ॥
सुहामिच्चुणा मरित्ता । णियमा देवत्त पावंति ॥२६४॥

अर्थ-भोग भूमिमें एक साथ लड़का लड़की का जोड़ा पैदा होता है और ४९ दिन में यौवन दशाको प्राप्त होजाते हैं, उनका शरीर समचतुस्र संस्थान और वज्र वृषभनाराच संहननवाला होताहै, वे मनुष्य ७२ कला और ६४ गुणवे, कमती कषायवाले। ३२ लक्षण वाले, उद्यमवान, विनयवान होते हैं, जब आयु नौ महीने की रहजाती है तब स्त्री गर्भवती होतीहै,बालकके जन्मतेही स्त्री पुरुष दोनों शुभमरणसे मरकर अवश्य देवगतिमें जाते हैं-

ते पुण सम्माइट्ठी । बिरयाविरया ति तिविहपत्तस्स ॥
जायंति दाणफलउं । कप्पेसु महड्ढिया देवा ॥ २६५॥
अप्पछरसयमज्झगया।तत्थाणुभोगइ विविहसुरसोक्खं॥
तत्तो चुया सम्माण- । मंडलीयासु जायंते ॥ २६६ ॥
तत्थ वि बहुप्पयारं । मणुयसुहं भुंजिऊण णिव्विग्घं ॥

विगयभयावैर- । गकारणं किंपि दट्ठूण ॥ २६७ ॥
पडिबुद्धिऊण चइऊ- । ण णिवसीरिं संजमं च घित्तूण ॥
उप्पाइऊण णाणं । केई गच्छंति णिव्वाणं ॥२६८ ॥
अएणे सुदेवत्तसुमा- । णुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण ॥
सत्तट्ठभवेहि तउ । करंतिकम्मक्खयं णियमा ॥ २६९ ॥

अर्थ–व्रती वा अव्रती सम्यक् दृष्टि तीन प्रकारके पात्र को दान देनेके फलसे स्वर्ग में महार्द्धिक देव होताहै–वहां सैकड़ों अप्सराओं के बीच रहकर अनेक प्रकारके दिव्य भोग भोगताहै, वहांसे मरकर मध्यलोकमें मंडलेश्वर राजा आदिक उच्च पदवीकाधारी होताहै वहां भी निर्विघ्नतासे बहुत प्रकारके मनुष्य सम्बन्धी सुख भोगकर पीछे वैराग्य प्राप्तहोने का कोई भी कारणपाकर वह बुद्धिमान् निर्भय होकर राज पाटको छोड़कर और संयमको ग्रहण करके ज्ञानके प्राप्त होनेपर मोक्षको चला जाताहै–

और कोई जीव फिर श्रेष्ठ मनुष्य होताहै और सात आठ भवमें नियमरूप कर्मोंको क्षयकरदेताहै अर्थात मुक्तिपालेताहै–

एवं पत्तविसेसं । दाणविहाणं फलं च णाऊण ॥
अतिहिस्स संविभागो । कायव्वो देसविरदेहि ॥ २७० ॥

अर्थ–इस प्रकार पात्रको, दान देनेकी विधिको, और दानके फलको जानकर देश विरति श्रावकको अतिथि संविभाग करना चाहिये–

धरिऊण वत्थमत्तं । परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं ॥
सगिहे जिणालये वा । तिविहाहारस्स वोसरणं ॥ २७१ ॥
जं कुणइ गुरुसयास- । म्मि सम्ममालोइऊण तिविहेण ॥
सल्लेखणं चउत्थं । सुत्ते सिक्खावयं भणियं ॥२७२॥

अर्थ–वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर और बाकीको त्यागकर अपने ही घरमें वा जिन मंदिर में रहकर और तीन प्रकार का आहार त्यागकर जो कोई गुरुके सामने भले प्रकार मन वचन कायसे आलोचना करताहै वह सल्लेखना करता है जिसको शास्त्र में चौथा शिक्षा व्रत कहाहै–

एवं वारसभेयं । वयठाणं वण्णियं मए विदियं ॥
सामाइयं तिदीयं । ठाणं संखेवउ वोच्छं ॥२७३॥

अर्थ—इसप्रकार मैंने दूसरी प्रतिमाके १२ व्रत वर्णन किये, अब तीसरी सामायिक प्रतिमाको संक्षेप से वर्णन करता हूं -

तीसरी सामायिक प्रतिमा ॥

होऊण सुई चेइय। गिहम्मि सगिहे व चेइयाहिमुहो ॥
अएणत्थ सुइपएसे। पुव्वमुहो उत्तरमुहो वा ॥२७४॥
जिणवयणधम्मचेइय-। परमेट्ठिजिणालयाणि णिच्चं पि ॥
जं वंदणं तियालं। कीरइ सामाइयं तं खु ॥ २७५ ॥

अर्थ-जो कोई शुद्ध होकर अर्थात् स्नान आदिक करके जिन मन्दिरमें वा अपने घरमें जिन बिम्बके सन्मुख वा अन्य पवित्र स्थान में पूर्वदिशा की तरफ वा उत्तर दिशाकी तरफ मुखकरके नित्यतीनकाल जिन धर्म, जिनशास्त्र, जिन बिम्ब, परमेष्ठि और जिन मंदिरकी वंदना करताहै वह निश्चयरूप सामायिक प्रतिमा का धारी है-

काउस्सग्गम्हि ठिओ । लाहालाहं च सत्तुमित्तं च ॥
संजोयविप्पओयं । तिणकंचणचंदणं वासिं ॥ २७६ ॥
जो पस्सइ समभावं। मणम्मि धरिऊण पंचणवयारं॥
वरअट्ठपाडिहारे-। हि संजुयं जिणरूवं च ॥२७७॥
सिद्धसरूवं झायइ । अहवा झाणुत्तमं ससंवेयं ॥
खणमेकमविचलंगो । उत्तमसामाइयं तस्स ॥ २७८ ॥

अर्थ-जो कोई कायोत्सर्ग में स्थित होकर लाभ अलाभ, शत्रु मित्र संयोग वियोग, तृण और स्वर्ण, चन्दन और सर्पको समान दृष्टि से देखता है और मन में पंचनमस्कार मंत्र धारण करता है आठ अष्ठ प्रातिहार्य संयुक्त जिन भगवान्के स्वरूप का ध्यान करताहै वा एकक्षण के वास्ते भी निश्चल अंगहोकर अपने आत्मरूपका ध्यान करताहै उसकी सामायिक उत्तम है-

एवं तिदियं ठाणं। भणियं सामाइयं समासेण ॥
पोसहविहि चउत्थं। ठाणं एदो पवक्खामि ॥२७९॥

अर्थ-इसप्रकार संक्षेप रूप तीसरी सामायिक प्रतिमा का वर्णन किया, अब मैं चौथी प्रोषध प्रतिमाकी विधि का इसप्रकार वर्णन करता हूं—

चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा ॥

उत्तममज्झजहएणं । तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्टं ॥
सगसत्ति एयमास- । म्मि चउस्सु पव्वेसु कायव्वं ॥ २८० ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और जघन्य तीन प्रकारका प्रोषध उपवास कहागया है जो एक महीने में चार पर्वमें अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये—

सत्तमितेरासिदिवस्सम्मि । अतिहिजणभोयणावसाणम्मि ॥
भोत्तुण भुंजण जोयं । यत्थावि काऊण मुहसुद्धिं ॥ २८१॥

अर्थ—सप्तमी और त्रयोदशी के दिन आतिथिको भोजन देकर और आप भोजन खाकर अपनेमुखको शुद्ध करलेना चाहिये—

पक्खालिऊण वयणं । करचरणे णियामेऊण तत्थेव ॥
पच्छा जिणंदभवणं । गंतूण जिणा णमंसित्ता॥२८२॥

अर्थ—शरीरको और हाथ पैरको धोकर उपवास के नियम नियत करके पश्चात् जिन मंदिरमें जावे और जिनेश्वरको प्रणामकरै—

गुरुपुरउ किरिय कम्मं । वंदणपुव्वं कमेण काऊण ॥
गुरुसक्खियमुववासं । गहिऊण चउविहं विहिणा ॥ २८३ ॥

अर्थ—गुरुको बंदना करके और पहले कहे हुवे क्रमके अनुसार आलोचना आदिक करके गुरुकी साक्षी से चार प्रकारके आहार का त्याग करै अर्थात् उपवास ग्रहण करै—

वायणकहाणुपेहण- । सिक्खावणचिंतणाइउवजोगेहिं ॥
णेऊण दिवसं सेसं । अवराण्हियवंदणं किच्चा ॥२८४॥

अर्थ—शास्त्र बांचना, धर्मकथाकहना, अनुप्रेक्षा अर्थात बारह प्रकारकी भावना करना, दूसरों को शास्त्र सिखाना, विचारना—इत्यादिक उपयोगमें दिन व्यतीत करके संध्या समय की क्रिया बंदना आदिक करै—

रयणिसमयह्मि ठिच्चा । काउस्सग्गेण णियसत्तीए ॥
पडिलेहिऊण भूमिं । अप्पपमाणेण संथारं ॥२८५ ॥

अर्थ—रात्रिके समय अपनी शक्ति के अनुसार कायोत्सर्ग में स्थित होकर अपने शरीरके बराबर भूमिपर सांथरा करै—

णेऊण किंचि रत्तिं । सइऊण जिणालए णियघरे वा ॥

अहवा सयलं रात्तिं । काउस्सग्गेण णेऊण ॥ २८६ ॥

अर्थ-जिन मंदिरमें वा अपने घरमें सारीरात वा थोड़ीरातके वास्ते कायोत्सर्ग रहै-

पच्चुस्से उट्ठित्ता । वंदणविहिणा जिणा णमंसित्ता ॥
तह दव्वभावपुज्जं । जिणसुयसाहूण काऊण ॥२८७॥

अर्थ-प्रातःकाल उठकर वन्दना और नमस्कार आदिकरके देव गुरु और शास्त्रकी द्रव्यपूजा और भावपूजा करकै-

सुत्तविहाणेण तहा । दिणहं रत्तिं पुणो वि गमिऊण ॥
पारणदिवसम्मि पुणो । पूजं काऊण पुव्वं वा ॥२८८॥

अर्थ-शास्त्रोक्त विधिके अनुसार वह दिन और रातभी व्यतीत करके पारणा के दिन फिर पहले की समान पूजा करै-

गंतूण य णियगेहं । अतिहिविभागं च तत्थ काऊण ॥
जो भुंजइ तस्स फूडं । पोसहविहि उत्तमं होई ॥२८९॥

अर्थ-फिर अपने घरमें जाकर वहां आतिथि संविभाग करके जो कोई पीछेसे भोजन करताहै उसका उत्तम प्रोषधोपवासहोताहै॥

जह उक्कस्स तहाम-ज्झमवि प्पोसहविहाणमुद्दिट्ठं ॥
णवरविसेसो सलिलं । छंडित्ता वज्जए सेसं ॥२९०॥

अर्थ-उत्कृष्ठ प्रोषधोपवासकी जो विधिहै वहही मध्यम प्रोषधोपवासकी समझनी चाहिये, कुछ बहुत फरक नहीं है, मध्यम उपवासमें पानीके सिवाय और सर्व वस्तुका त्यागहोताहै

मुणिऊण गुरुवकज्जं । सावज्ज विवज्जिऊण णिरारंभं ॥
जइ कुणइ तं पि कुज्जा । सेसं पुव्वंव णायव्वं ॥ २९१ ॥

अर्थ-पापसे बचने के वास्ते बड़े कामों का आरम्भ भी छोड़ना चाहिये यदि कोई काम करना भी हो तो करै परन्तु बाकी कामों को पूर्व कथित समझना चाहिये अर्थात् बाकी आरम्भ का त्याग करना चाहिये—

आयंबिलं य णियडी । एइठाणं च एयभत्तं वा ॥
जं कीरइ तं णेयं । जहण्णयं पोसहविहाणं॥२९१॥

अर्थ-आम्बिल पीना वा मीठा न डालकर कोई एक पदार्थ पीना वा एक स्थानमें बैठकर भोजन करना यह जघन्य प्रोषधोपवास है—

सीरएहाणुवट्टण- । गंधमलकेसाइदेहसंकप्पं ॥
अएणं पि रागहेऊ । विवज्जए पोसहदिणह्मि ॥ २९३ ॥

अर्थ-प्रोषधके दिन स्नान करना, उबटना मलना, सुगंधिलगाना, मालापहनना, बाल बनवाना, देहको साफ करना आदिक क्रिया जो राग उत्पन्न करने वालीहैं नहीं करनी चाहियें—

एवं चउत्थठाणं । विवरिणयं पोसहं समासेण ॥
एदो कमेण सेसा- । णि सुणह संखेवेउ वोच्छं ॥ २९४ ॥

अर्थ-इस प्रकार संक्षेपरूप चौथी प्रतिमा का वर्णन किया अब अन्य प्रतिमाओंका भी वर्णन सुनो संक्षपसे कहता हूं-

पांचवीं सचित्तत्यागप्रतिमा ॥

जं वज्जिज्जं हरियं । तुयपत्तपवालकंदफलवीयं ॥
अप्पासुगं च सलिलं । सचित्तविणिवित्ति तं ठाणं॥ २९५ ॥

अर्थ-लकड़ी, पत्र, अंकुर, कंद, फल,बीज आदिक हरित पदार्थ और अप्रासुक पानी का त्याग सचितत्याग प्रतिमाहै-

छटी दिवाब्रह्मचर्यप्रतिमा ॥

मणवयणकायकयका-। रियाणुमोएहिं मेणहुं णवधा ॥
दिवसह्मि जो विवज्जइ । गुणम्मि सो सावऊ छट्ठो ॥ २९६ ॥

अर्थ—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना अर्थात् ९ प्रकार से दिनके समय मैथुन का त्याग छटीप्रातिमा है-

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

पुव्वुत्तणवविहाणं । पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ॥
इत्थिकहाइणिवित्तो । सत्तमगुणबंभयारी सो ॥२९७॥

अर्थ-पूर्वोक्त ९ प्रकारसे सर्वथा मैथुनका त्याग और स्त्री कथाकाभी त्याग सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है-

आठवीं आरंभत्यागप्रतिमा ॥

जं किंचि गिहारंभं । बहु थोगं वा सया विवज्जेई ॥
आरंभणियट्टिमई । सो अट्ठम सावऊ भणिऊ ॥ २९८ ॥

अर्थ-थोड़ा वा बहुत सदाके वास्ते गृहसम्बन्धी आरम्भ का त्याग करना आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमाहै—

नवमीं परिग्रहत्यागप्रतिमा ॥

मोत्तूण वत्थमत्तं । परिग्गहं जो विवज्जए सेस ॥
तत्थ वि मुच्छं ण करेइ । जाणइ सो सावउ णवमो ॥ २९९ ॥

अर्थ-वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर जो बाकी परिग्रहका त्याग करताहै और जितनो परिग्रह रखताहै उसमें भी ममत्व नहीं करताहै वह नवमीं प्रतिमाका श्रावक है-

दशवीं अनुमतित्यागप्रतिमा ॥

पुट्ठो वि गिहयमेहिं । य परेहिं लोगेहिं स गिहकज्जम्मि ॥
अणुमणणं जो ण कुणइ । वियाण सो सावउ दसमो ॥ ३०० ॥

अर्थ- अपने वा पराये गृहकार्यकी बाबत पूछने परभी जो अनुमोदना नहीं करताहै अर्थात उस कार्यको अच्छा नहीं कहताहै और अनुमति अर्थात् सलाह नहीं देताहै वह दशमी प्रतिमाका श्रावकहै-

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्यागप्रतिमा ॥

एयारसम्मि ठाणे । उक्किट्ठो सावउ हवे दुविहो ॥
वत्थेकधरो पढमो । कोवीणपरिग्गहो विदिउ ॥ ३०१ ॥

अर्थ-ग्यारहवीं प्रतिमाका श्रावक उत्कृष्ट श्रावक होताहै उसके दो भेदहैं,प्रथम वस्त्रका रखनेवाला और दूसरा कोपीनमात्र रखनेवाला

धम्मिल्लाणं चयणं । करेइ कत्तरि छुरेण वा पढमो ॥
ठाणाइसु पडिलेहइ । उवयरणेण पयडप्पा ॥ ३०२ ॥

अर्थ-पहले दर्जेवाला अपने बाल उस्तरेसे बनवाताहै या कैंचीसे कतरवाताहै,और यत्नके साथ उपकरणसे स्थान आदिको साफ करताहै

भुंजइ पाणिपत्त- । म्मि भायणे वा सुई ससुइट्ठो ॥
उववासं पुण णियमा । चउव्विहं कुणइ पव्वेसु ॥ ३०३ ॥

अर्थ-हाथमें वा पवित्र बर्तनमें खाना खाता है और चार पर्वोंमें नियमके साथ उपवास करता है-

पक्खालिऊण पत्तं । पविसइ चरियाय पंगणे ठिच्चा ॥
भणिऊण धम्मलाहं । जायइ भिक्खं सयं चेव ॥ ३०४ ॥

अर्थ-धोयेहुवे बर्तनको लेकर भिक्षाके वास्ते जाताहै और श्रावकके घरके आंगनमें ठहरकर धर्मलाभ कहकर आप भिक्षा मांगताहै-

सिग्घं लाहालाहे । अदीणवयणो णिउयत्तिऊण तउ ॥
अण्णम्मि गिहे वच्चइ । दरिसइ मोणेण कायव्वं ॥ ३०५ ॥

अर्थ-भिक्षा न मिलनेपर दीनबदन न होकर शीघ्र वहांसे निकल आताहै और दूसरे घर जाता है और मौनधरकर अपना आशय प्रकट करताहै-

जइ अद्धहवे कोई । पभणइ पच्छइ भायेणं कुणह ॥
भोत्तूण णियय भिक्खं । तसयणं भुंजइ सेसं ॥३०६॥

अर्थ-रस्तेके बीचहीमें यदि कोई बुलाताहै और भोजन करनेकी प्रार्थना करताहै तब पहली लीहुई भिक्षाको खाकर उसकी दीहुई भिक्षाको खाताहै-

पच्छा एयाम्मि गिहे । जाइज्जइ प्पासुगं सलिलं ॥ ३०७ ॥
जं कि पि पडिय भिक्खं । भुंज्जिजो सोहिऊण जत्तेण ॥
पक्खालिऊण पत्त । गच्छिज्जो गुरुसयासम्मि ॥ ३०८ ॥

अर्थ-यदि कोई नहीं बुलाताहै तब अपने पेट भरनेके मुआफिक भिक्षाके वास्ते फिरता रहताहै, फिर किसी एक घर जाकर जो कुछ मिलाहो उसको खाकर और प्रासुक पानी पीकर और यत्न के साथ बर्तनको धोकर गुरुके पास जाताहै-

जइ एवं ण लहिज्जो । काउरिसागिहम्मि चरियाए ॥
पविसत्ति एयाभिक्खा- । पवित्तिणियमयणं ता कुज्जा॥३०९॥

अर्थ-यदि कृपण पुरुषोंके ही घर हों और भोजन न मिलै तब एक दिनके उपवासका नियम करताहै-

गंतूण गुरुसमीवं । पच्चक्खाणं चउविहं विहिणा ॥
गहिऊण यउं सव्वं । अलोचेउं पयत्तेण ॥ ३१० ॥

अर्थ-गुरुके समीप जाकर चार प्रकारके आहारका त्याग करके यत्नके साथ सब बातोंकी आलोचना करताहै अर्थात अपने दोषों को प्रकट करताहै-

एवं भेउं होई । णवर विसेसो कुणिज्ज णियमेण ॥
लोचं धरिज्ज पिच्छं । भुंजिज्जो पाणिपत्तम्मि ॥ ३११ ॥

अर्थ-दूसरे दर्जे वालेकी भी यहही क्रियाहै फरक इतनाहै कि नियम के साथ केशलोंच करताहै, पीछा रखताहै और हाथमें भोजन करताहै

दिणपडिमवीरचरिया- । तियालजोगेसु णत्थि अहियारो ॥
सिध्दांतरहस्साणवि । अज्झयणं देसविरदाणं ॥ ३१२ ।

अर्थ-दिनमें प्रतिमा योग होना अर्थात् नग्नदिगम्बर होना, वीर आसन, त्रिकालयोग अर्थात् गर्मीमें पर्वतके शिखरपर वरसातमें वृक्षके तलै और सरदीमें नदीके किनारे ध्यान करना, सिद्धान्तके रहस्यका पढ़ना, इन बातोंका देशविरतिको अधिकार नहींहै-

उद्दिठ्ठपिंडविरउं । दुवियप्पो सावरउं समासेण ॥
एयारसम्मि ठाणे । भणिउं सुत्ताणुसारेण ॥ ३१३ ॥

पाठकोंको सूचना दीजाती है कि-आगेको दृष्टिदोषसे ४९ पृष्ठके स्थानपर ५७ पृष्ठसे नंबर लगगये हैं,

अर्थ-उत्कृष्ट श्रावक के दो भेद और प्रतिमाका वर्णन शास्त्रके अनुसार संक्षेपसे कियागया-

रात्रिभोजनदोष ॥

एयादसेसु पढमं । वि जदो णिसिभोयणं कुणंतस्स ॥
ठाणं ण ठाइ तह्मा । णिसिभुत्तं परिहरे णियमा ॥ ३१४ ॥

अर्थ-यदि कोई रात्रिभोजन करता है तो वह ग्यारह प्रतिमा में से पहिली प्रतिमा काभी श्रावक नहीं रहताहै इस कारण रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिये-

चम्मट्ठिकीडउंदुरु । भुयंगकेसाइ असणमज्झम्मि ॥
पडियं ण किंपि पस्सइ । भुंजइ सव्वंपि णिसिसमए ॥ ३१५ ॥

अर्थ-रात्रिके समय चमड़ा, हड्डी, कीड़ा, ऊंदर, सांप, और बाल आदिक जो कुछभी भोजन में पड़ जाता है वह नजर नहीं आता है और सब खाया जाता है-

दीवज्जोई कुणइ । तह वि चउरिंदिया अपरिमाणा ॥
णिवडंति दिट्ठिराए । ण मोहिया असणमज्झम्मि॥ ३१६ ॥

अर्थ-यद्यपि दीपक से रोशनी होतीहै परन्तु दृष्टिराग से मोहित होकर अणगिणत चौ इन्द्रिय जीव भोजनमें आपड़तेहैं-

इय एरिसमाहारं । भुंजंतो आदणासमिह लोए ॥
पाउणइ परभवम्मि । चउगइसंसारदुक्खाइं ॥ ३१७ ॥

अर्थ-इसप्रकार के आहार का खानेवाला इस लोकमें अपनी आत्माका नाश करता है और परभव में चतुर्गति रूप संसारके दुःख पाताहै-

एवं बहुप्पयारं । दोसं णिसिभोयणम्मि णाऊण ॥
तिविहेण राइभुत्ती । परिहरियव्वा हवे तह्मा ॥ ३१८ ॥

अर्थ-इस प्रकार बहुतदोष रात्रि भोजनमें जानकर मन वचन काय से रात्रि भोजनका त्याग करना चाहिये-

देशविरतिकेअन्यकर्तव्य ॥

विणओ वैयाविच्चं । कायकिलेसो य पूयणविहाणं ॥
सगसत्ती जहजोग्गं । कायव्वं देसविरएहिं ॥ ३१९ ॥

अर्थ–देश विरतिको अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य विनय वैयावृत्य, कायक्लेश, और पूजा करनी चाहिये–

दंसणणाणचरित्ते । तव उवयारम्मि पंचहा विणऊ ॥
पंचमगइगमणत्थं । कायव्वो देसविरएण ॥ ३२० ॥

अर्थ–दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, और उपचार यह पांच प्रकार की विनय मोक्षके अभिलाषी देश विरति को करनी चाहिये–

णिस्संकियसंवेगा- । इ जे गुणा वणिणया मए पुव्वं ॥
तेसिमणुपालणं जं । स वियाणीहि देसणे विणऊ ॥ ३२१ ॥

अर्थ–निःशङ्कित और संवेग आदिक जो गुण मैंने पहले वर्णन किये हैं उनको पालन करना दर्शन विनयहै–

णाणे णाणुवयरणे । णाणवंतम्मि तहय भत्ती य ॥
जं पडियरणं कीरइ । णिच्चं तं णाणविणऊ ॥३२२॥

अर्थ–ज्ञानकी, ज्ञानके प्राप्त करानेवाले शास्त्रकी और ज्ञानी पुरुषकी भक्तिकरना, और ज्ञानका अभ्यास करना ज्ञान विनयहै–

पंचविहं चारित्तं । अहियारा जे हि वणिणया तस्स ॥
जं तेसिं बहुमाणं । वियाण चारित्तविणऊ सो॥३२३॥

अर्थ–पांच प्रकारके चारित्रका आदर करना अर्थात् यथा शक्ति पालना चारित्र विनयहै–

वालो यं वुड्ढो यं । संकप्पं वज्जिऊण तवस्सीणं ॥
जं पणिवायं कीरइ । तवविणयं तं वियाणीही॥३२४॥

अर्थ–यह तपस्वी बालक है, यह वृद्ध है इस प्रकार का विकल्प नहीं करके सर्व तपस्वियों को नमस्कार करना तप विनय है–

उवयारिऊ वि विणऊ । मणवचिकायेण होइ तिवियप्पा ॥
सो पुण दुविहो भणिऊ। पच्चक्खपरोक्खभेएण ॥ ३२५ ॥

अर्थ–मनसे, वचन से, काया से, इस प्रकार उपचार विनय के तीन भेद हैं और इनके भी दो दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष वर्णन किये गये हैं—

जं दुप्परिणामाऊ । मणो णियत्ताविऊण सुहजोए ॥
वाविज्जइ सो विणऊ । जिणेहि माणस्सिऊ भणिऊ ॥ ३२६ ॥

अर्थ–मन को खोटे परिणामों से हटाकर शुभयोग में लगाना इसको जिनेंद्र ने मन विनय कहा है–

हियमियपुज्जं सुत्ता- । णुवचि अफरसमकक्कसं वयणं ॥
संजमिजणम्मि जं चा- । टुभासणं वाचिउं विणउं ॥३२७॥

अर्थ-हित, मित, पूज्य, शास्त्र के अनुसार वचन कहना, ऐसे वचन कहना जिनकी हृदय पर चोट न लगे, जो कर्कश न हों, संयमी मुनि को आदरकरनेवाले वचन कहना वचन विनय है—

किरियं अब्भुट्ठाणं । णवणंजलि आसणं च करवाणं ॥
एते पच्चुग्गमणं । च गच्छमाणे अणुव्वजणं ॥ ३२८ ॥
कायणुरूवं मद्दणं । करणं कालाणुरूव पडियरणं ॥
संथाराईकरणं । उवयरणाणं च पाडिलिहणं ॥ ३२९ ॥
इच्चेवमाइ काइय- । विणउं रिसिसावयाण कायव्वो ॥
जिणवयणमणुगणंते- । ण देसविरएण जहजोग्गं ॥ ३३० ॥

अर्थ-मुनि और श्रावकों का आदर सत्कार करना, नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, आसन देना, आते को देखकर सत्कारके वास्ते उनके सन्मुख जाना, जाते समय उनके पीछे २ जाकर पहुंचा देना, उनके शरीर की शक्ति के अनुसार बदन मलना, समय के अनुसार मदद करना, सांथरा और उपकरण आदिकी सिंभाल करना, जिन आगम के अनुसार इत्यादिक काय विनय देश विरतिको करनी चाहिये-

इय पच्चक्खो एसो । भणिउं गुरुणा विणउं वि अण्णाए ॥
अणुवट्टिज्जइ जं तं । परोक्खविणऊं त्ति णायव्वो ॥३३१॥

अर्थ-इसप्रकार मन वचन कायकी जो विनय वर्णन कीगईहै वह प्रत्यक्ष विनय है और गुरूके मौजूद नहोने पर गुरू के पीछे गुरूकी आज्ञा के अनुसार चलना यह प्रोक्ष विनयहै-

विणएण ससीउज्जल- । जसोहधवालियदियंतउं पुरिसो ॥
सव्वत्थ हवइ सुहिउं । तहेव आदिज्जवयणो य ॥ ३३२ ॥

अर्थ-विनय के फलसे पुरुषका चंद्रमा समान उज्ज्वल यश सब तरफ फैलता है और वह सर्वत्र सुखी होता है और सूर्यके समान तेजस्वी होताहै-

जे केइ वि उवएसा । इहपरलोए सुहावा संति ॥
विणएण गुरुजणाउं । सव्वे पाउणइ ते पुरिसा ॥ ३३३ ॥

अर्थ-इस लोक और परलोक सम्बन्धी सुख प्राप्त करानेवाले गुरुओं का उपदेश विनय से ही प्राप्तहोताहै-

देविंदचक्कहरमं- । डलीयराया ण जं सुहं लोए ॥
तं सव्वं विणयफलं। णिव्वासुहं तहा चेव॥१३४॥

अर्थ-इसलोक में देवेंद्र चक्रवर्ती और मांडलिक राजा आदिक को जो सुख है और मोक्ष सुख यह सब विनय काही फल है-

सामण्णा वि य विज्जा । ण विणवहीणस्स सिद्धिमुवयाइ ॥
किं पुण णिव्वुइविज्जा । विणयविहीणस्स सिज्झेइ ॥१३५॥

अर्थ-सामान्य विद्याभी विनयहीन पुरुषको प्राप्तनहीं होती है तो मुक्ति प्राप्तकराने वाली विद्या विनयहीन को कैसे प्राप्त होसक्तीहै-

सत्तू वि मित्तभावं । जह्मा उवयाइ विणयसीलस्स ॥
विणओ तिविहेण तओ । कायव्वो देसविरदेण॥१३६॥

अर्थ-विनयसे शत्रुभी मित्र होजाताहै,इस कारण देश विरति को मन बचन कायसे विनय करनी चाहिये-

अइबालवुड्ढरोगा- । भिभूयतणुकिलेससंजुत्ताणं ॥
चाउव्वण्णे संघे । जहजोग्गं तह मणोण्णाणं ॥ ३१७ ॥
करचरणपिट्ठिरसाणं । मद्दण अब्भंगसेयकिरियाहिं ॥
उव्वत्तणपरियत्तण- । पसरणसंकुडणाइहिं ॥ ११८ ॥
पाडिजग्गाणेहिं तणु । जोयभत्तपाणेहि भेसजेहिं ॥
तह उच्चाराईणावि । किंचणेणेहिं तणुधोवणेहिं च ॥ ३३९ ॥
संथारसोहणेहि य । वज्जावच्चं सया पयत्तेण ॥
कायव्वं सत्तीए । णिव्विदिगिच्छेण भावेणं॥३४० ॥

अर्थ-मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, इनमें कोई बालक बूढा, रोगी हो वा शरीर में क्लेशहो वा दश प्रकारके मुनि इनके हाथ पैर पीठ सिर दबाना अंग सेकना, उठाना बिठाना इनका अंग पसारना सिकोड़ना कड़थल दिलाना, प्रकृतिके समान अर्थात् मिजाजके मुआफिक अन्नपानी देना, मल मूत्र आदि फेंकना, शरीरधोना, सांथराठीक करना इत्यादि वैय्या वृत्यअपनी शक्ति समान ग्लानि को छोड़कर सदा करनी चाहिये-

णिस्संकिय संवेगा- । इ जे गुणा वण्णिया मणोविसया ॥

तें होंति प्पयडा पुण । विज्जावच्चं करंतस्स ॥ १४१ ॥

अर्थ-निः शंक आदिक सम्यक्त्व के आठ अंग और संवेगादि आठगुण जो मन सम्बन्धी वर्णन कियेगये हैं वह वैय्या वृत्य करने से प्रकट होतेहैं—

देह तवणियमसंजम- । सीलसमाहाण अभयदाणं च ॥
गइ मइ वलं च दिएणं । विज्जावच्चं करंतेण ॥१४२ ॥

अर्थ-देह, तप, नियम, शील, समाधान, अभयदान, गति, बुद्धि बल आदिक वैयावृत्य करनेवाले को मिलतेहैं—

गुणपरिणामो जाइय । जिणिंदआणा य पालिया होइ ॥
जिणसमयतिलयभूओ । लब्भइ पत्तो वि गुणरासीओ ॥ १४३ ॥
भमइ जए जसकित्ती । सज्जणसुइहियरणयणसुहजणणी ॥
अएणे वि य होंति गुणा । विज्जावच्चेण इह लोए ॥ १४४ ॥

अर्थ-वैयावृत्य करनेवाले के परिणाम गुणरूप होजाते हैं वह जिनेन्द्रकी आज्ञाका पालनेवाला होजाता है, वह जैन विद्या में श्रेष्ठ होकर परलोक में भी उत्तम गुण प्राप्त करता है, सज्जन पुरुषों के कानको मनको और आंखों को सुख देनेवाली उसकी यशकीर्ति जगत् में फैलती है और इसलोक में अन्यभी बहुत से गुण प्राप्त होते हैं—

परलोए वि सरूवो । चिराउसो रोयसोयपरिहीणो ॥
बलतेयसत्तजुत्तो । जायइ अखिलप्पयाओ व ॥१४५ ॥

अर्थ-वैय्यवृत्य करनेवाला जन्मान्तर में भी सुंदररूप, दीर्घ आयु, रोगशोक रहित बल तेज और सत्व संयुक्त और पूर्ण प्रतापीहोता है—

जल्लोसहिसव्वोसहि- । अक्खीणमहाणसाइरिद्धीओ ॥
अणिमाइगुणा य तहा । विज्जावच्चेण पाउणाइ ॥ १४६ ॥

अर्थ-जलौषधि, सर्वौषधि, अक्षीण महानस आदिक ऋद्धि और अणिमा आदिक गुण वैयावृत्य से प्राप्त होतेहैं—

किं जम्पिएण बहुधा । तिलोयसंखोहकारणं महत्तं ॥
तित्थयरणामपुएणं । विज्जावच्चेण अज्जेइ ॥ १४७ ॥

अर्थ-बहुत कहने से क्या होताहै तीन लोक में आश्चर्य-

कारी जो महामहत्व तीर्थंकर नाम पुण्यप्रकृति है वहभी वैयावृत्य से उत्पन्न होजाती है-

तरुणिमणणयणहारी। रूपवलतेयसत्तसं पएणो ॥
जाउं विज्जावच्चं। पुव्वं काऊण वसदेवो ॥ ३४८॥

अर्थ-पूर्व जन्म मे वैयावृत्य करने से वासुदेव स्त्रियोंके मन और नयन को हरनेवाला रूपवान् और पूर्ण बल तेज और सत्व वाला हुआ-

आइरियाणं विज्जा-। विच्चं किच्चा असंजदेणावि ॥
तित्थयरणाम पु एणं। समज्जियं वासुदेवेण ॥ ३४९॥

अर्थ-असंयत अर्थात् व्रतहीन होनेपर भी वासुदेव ने आचार्यों की वैयावृत्य करने से तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति का बंध किया-

एवं णाऊण फलं। विज्जावच्चस्स परमभत्तीए ॥
णिच्छयजुत्तेण सया। कायव्वं देसविरएण ॥ ३५० ॥

अर्थ-इस प्रकार वैयावृत्य के फल को जानकर दृढ़ निश्चय होकर देशविरति को सदा भक्ति के साथ वैयावृत्य करनी चाहिये-

आयंविलणिव्वियडी। एयट्ठाणं छट्ठमाइखवणेण ॥
जं कीरइ तणुतावं। कायकिलेसो मुणेयव्वो ॥३५१॥

अर्थ-आंबील पीकर, बिना मिठाई के खाकर, एक स्थान में भोजन करके वा छठे दिन आठवें दिन वा पंद्रहें दिन भोजन करके शरीर के आताप देने को काय क्लेश जानना चाहिये—

मेहाविणरा एए-। ण चेव बुज्झंति बुद्धिविहवेण ॥
मंदवुद्धिणो तेण। किं पि वोच्छामि सावसेसं ॥३५२॥

अर्थ-जो बुद्धिवान् मनुष्य हैं वह तो अपनी बुद्धिवलके द्वारा इतनी ही बात से उपवास का स्वरूप जान लेते हैं परन्तु मन्दबुद्धि पुरुषों के समझाने के वास्ते विस्तार के साथ वर्णन करता हूं-

आसाढ कत्तिए फ-। ग्गुणे य सियपंचमीए गुरुमूले ॥
गहिऊण विहिं विहिणा। पुव्वं काऊण जिणपूजा ३५३
पडिमासमेक्कखमणो-। ण जावज्जासाणि पंचमासा य ॥
अविच्छिण्णं कायव्वा। सुत्तिसुहं जायमाणेण ॥ ३५४ ॥

अर्थ-आषाढ़, कार्तिक, वा फाल्गुण महीने में से किसी एक महीने

की शुक्लपक्ष की पंचमी को प्रथम जिन पूजा करके और गुरू के समीप आकर विधिपूर्वक उपवास व्रत ग्रहण करके मुक्ति सुख चाहने वालों को पांच वर्ष तक उसही महीने और उसही पक्ष में बराबर करते रहना चाहिये बीचमें किसी वर्ष भी अन्तर नहीं पड़ना चाहिये ॥

अवसाणे पंच घडा- । विऊणं पडिमाय जिणवरिंदाणं ॥
तह पंच पुत्थयाणि य- । लिहाविऊणं ससत्तीए ॥१५५॥
तेसिं पविहियाले । जं किं पि पइठ्ठजोग्गमुवयरणं ॥
तं सव्वं कायव्वं । पत्तेयं पंच पंच संखाए ॥ १५६ ॥

अर्थ-व्रतपूर्ण होजानेपर जिनेंद्रकी पांच प्रतिमावनवानी चाहियें और अपनी शक्ति समान पांच पुस्तक लिखवानी चाहियें-और उनकी प्रतिष्ठाकराने में जो जो उपकरण चाहिये वह भी पांच २ बनवाने चाहियें—

सुहिरण्णपंचकलसे । पुरउं वित्थारिऊण वत्थमुहे ॥
पक्कण्णं बहुभेयं । फलाणि विविहाणि तह चेव ॥ ३५७ ॥
दाणं च जहाजोग्गं । दाऊण चउव्विहस्स संघस्स ॥
उज्जावणविहि एवं । कायव्वो देसविरएण ॥३५८॥

अर्थ-उत्तम सोने के पांच कलशजिनका मुख वस्त्रसे बंधाहुवा हो और बहुत प्रकारके पकान और फल पास रखदे और चतुर्विध संघको अर्थात मुनि श्रावक और आर्यका और श्रावका को यथा योग्य दानदेकर देश विरतिको इसप्रकार उद्यापनकी विधि करनी चाहिये—

उज्जवणविहिं ण तरइ । काउं जइ कोवि अत्थपरिहीणो ॥
तो विउणं कायव्वं । उववासविहाणं पयत्तेण ॥ ३५९ ॥

अर्थ-यदि कोई निर्धन उद्यापनकी विधि नहीं करसक्ताहै तो विधिपूर्वक यत्नके साथ दुगणे उपवास करने चाहियें-अर्थात दश वर्षतक करना चाहिये—

जइ अंतरम्मि कारण- । वसेण एको व दो व उववासा ॥
ण कउं तो मूलाउं । पुणो वि सो होइ कायव्वो ॥३६०॥

अर्थ-यदि किसी कारणसे एक वा दो उपवास बीचमें न हो

सकैं तो प्रारम्भ से फिर उपवास करना शुरू करना चाहिये-

एस कमो णायव्वो । सव्वविहीणं भणिज्जमाणाणं ॥
एवं णाऊण फुडं । णियमाउं होइ कायव्वो ॥ ३६१ ॥

अर्थ=व्रतकी सर्व विधिजो वर्णन कीगई है उनको जानकर यदि किसी प्रकारभी व्रत भंग होजावे तो फिरसे उसही क्रमानुसारकरे-

पंचमिउववसविहि । किच्चा देविंदचक्कवट्टित्ते ॥
भोत्तूण दिव्वभोए । पच्छा पाउणइ णिव्वाणं ॥ ३६२ ॥

अर्थ-इस पंचमी व्रतका करनेवाला देवेंद्र और चक्रवर्ती आदिक के दिव्य भोग भोगकर पीछे निर्वाणपद प्राप्तकरताहै-

विहिणा गहिऊण विहिं । रोहिणिरिक्खम्मि पंचवासाणि ।
पंच य मासा जावउ । उववासं तम्मि रिक्खम्मि ॥३६३॥
काऊणुज्जावणं पुण । पुव्वविहाणेण होइ कायव्वं ॥
णवरि विसेसो पडिमा । कायव्वा वासुपुज्जस्स ॥ ३६४ ॥
तस्स फलेणित्थी वा । पुरिसो सोयं ण पच्छवि कया वि॥
भोत्तूण विहुलभोगं । पच्छा पाउणइ णिव्वाणं ॥ ३६५ ॥

अर्थ-रोहिणी नक्षत्र में विधिपूर्वक उपवास ग्रहण करकेपांच वर्षतक पांच महीने में रोहिणी नक्षत्रमें विधिपूर्वक करता रहै,और पूर्व विधिके अनुसार उद्यापन करे परन्तुप्रतिमा वास पूज्य भगवान् की करावे,इस व्रतके फलसे स्त्री हो वा पुरुषहो उसको शोक कभी नहीं होताहै बल्कि उन्नम २ भोग भोगकर पीछे निर्वाणपद प्राप्त करताहै- (यह रोहिणी व्रत कहलाताहै)

गिहिऊणासिणिरिक्ख- । म्मि विहि रिक्खेसु सत्तवीसेसु ॥
रिक्खंपडि एक्केक्को । उववासो होइ कायव्वो ॥ ३६६ ॥
एवं काऊण विहिं । सत्तीए को करीस उज्जवणं ॥
भुत्तूणंभुदयसुहं । सो पावइ अक्खयं सुक्खं ॥ ३६७ ॥

अर्थ-अश्विनी नक्षत्र में उपवास ग्रहण करके १७ सत्ताईस नक्षत्र में प्रत्येक नक्षत्र के दिन उपवास करना चाहिये इसप्रकार उपवास करके जो कोई शक्ति समान उद्यापान करता है वह अभ्युदय और सुख भोग कर मुक्तिपद प्राप्तकरता है-

काऊण अह एयं । तराणि रइयरणगेसु चत्तारि ॥
एया पडिवा वीयाउ दुणिणतीया उ तिणिण चउत्थीई ॥
चउरो य पंचमीउं । पंच य छट्ठीउ छट्टेव ॥ ३६८ ॥
सत्तेव सत्तमीउं । अट्ठाम्मिवं य णव य णवमीउ ॥
दसमीउं य तहा ए- । यारस एयारसीउं य ॥ ३६९ ॥
वारस य वारसीउं । तेरह तह तेरसीउं णायव्वा ॥
चौदस य चौदसीउं पएणरसा पुण्णिमाउं य ॥ ३७० ॥
उववासा कायव्वा । जहुत्तसंखा कमेण एयासु ॥
एसा णामेणं विहि । णेयाउ सुखसंपत्ती ॥ ३७१ ॥
एयस्सा संजाइए । फलेण अब्भुदयसुखसंपत्ती ॥
कमसो मुत्तिसुहस्स वि । तह्मा कुज्जा पयत्तेण ॥ ३७२ ॥

अर्थ-प्रतिपदा अर्थात पड़वातथि का एक उपवास, द्वितिया के दो उपवास, तीजके तीन, चौथके चार, पंचमी के पांच, छटके छै, सप्तमी के सात, अष्टमी के आठ, नवमी के नौ, दशमी के दश, एकादशीके ग्यारह, द्वादशीके १२, त्रयोदशी के १३, चतुर्दशी के १४, पूर्णमासी के १५, इस प्रकार सिल सिले वार उपवास करै इसको सुख सम्पत्ति व्रत कहते हैं इससे अभ्युदय और सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है और इसही से सिल सिलेवार प्रयत्न करनेसे मुक्ति सुख भी प्राप्त होजाता है—

दहिमुहसेलसु पुणो । अंजणजिणचेइएछहं ॥ ३७३ ॥
नंदीसराम्मि दीवे । एवं चउसु वि दिसासु कायव्वा ॥
उववासा एस विहि । णंदीसरपंति णामेण ॥ ३७४ ॥
जं किंपि देवलोए । महाद्धिदेवाण माणुसाण सुहं ॥
भोत्तूण सिद्धिसोक्खं । पाउणइ फलेण एयस्स ॥ ३७५ ॥

अर्थ-एक दिन उपवास करके फिर बीचका दिन छोड़कर तीसरे दिन उपवास करै फिर एक दिन छोड़कर अगले दिन उपवास करै इस प्रकार नंदीश्वर द्वीपके आठ रतिकर पर्वत सम्बंधी जिनेंद्र प्रतिमाके अर्थ आठ उपवास करै और फिर दधिमुख पर्वत सम्बंधी चार उपवास करै फिर अंजनागिर सम्बंधी एक उपवास करै इसप्रकार १३ उपवास एक दिशा के अर्थ करै इसही प्रकार चारों दिशा सम्बंधी

५२ उपवास करै इसको नंदीश्वर पंक्तिव्रत कहते हैं—इस व्रत के करनेसे महर्द्धिक देव और मनुष्यों का सर्व प्रकारका सुख भोगकर सिद्ध पदका सुख प्राप्त होताहै—

एयंतरोववासा। चत्तारि चउदिसासु काऊण॥
छट्ठं मज्झे एवं। तिसट्ठिखुत्तो विहिं कुज्जा॥ १७६॥
पढवणो णिव्वणो। छट्ठं मज्झम्मि अट्ठयं च तहा॥
एस विही णायव्वो। विमाणपंति णामेण॥ १७७॥
फलमेयस्सा भोत्तुण। देवमणुसेसु इंदियजं सुखं॥
पच्छा पावइ मोक्खं। थुणिज्जमाणो सुरिंदेहिं॥ १७८॥

अर्थ—प्रथम एक बेला फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास यह एक पटलका व्रत हुवा इसप्रकार ६१ पटलके व्रत करै अर्थात् एक पटलका व्रतकरके फिर एकासन फिर उपवास फिर बेला फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास करै यह दूसरा पटल हुवा इसही प्रकार ६३ पटलके व्रतकरै अन्त में तेला भी करै इसको विमान पंक्ति व्रत कहतेहैं इसमें १९७ दिन लगते हैं इसव्रतके फल से देवगति और मनुष्यगति के सुख मिलते हैं जिनको भोगकर मुक्ति प्राप्त होतीहै जिसकी वंदना स्तुति देवोंके इन्द्रभी करते हैं—

उद्दसमत्तमेयं। कीरइ अण्णं पि जं ससत्तीए॥
सुत्तोत्तवविहाणं। कायकिलेसुत्ति तं विंति॥ १७९॥

अर्थ—थोड़े से व्रतों का यह वर्णन किया गयाहै, अन्यभी बहुत प्रकार के व्रत शास्त्र में वर्णन किये गयेहैं इनको शक्ति समान करना चाहिये, तपविधान में इसको काय क्लेश समझना चाहिये—

जिणसिद्धसूरिपाठय- साहूणं जं सुयस्स विहवेण॥
कीरइ विविहा पूजा। वियाण तं पुजणविहाणं॥ १८०॥

अर्थ—जिन भगवान, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु और शास्त्रकी विविध प्रकार पूजा करनेको पूजन विधान जानो॥

णामट्ठावणादव्वे । खित्ते काले वियाण भावे य ॥
छव्विहपूया भणिया । समासउ जिणवरिंदेहिं ॥ ३८१ ॥

अर्थ–नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव यह छै प्रकार की पूजा जिनेंद्र भगवानने संक्षेपसे कही हैं–

उच्चारिऊण णामं । अरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि ॥
पुप्फाणि जं खिविज्जंति । विण्णेया णामपूयासा ॥ ३८२ ॥

अर्थ–अरहंत आदिक का नाम उचारण करके शुद्ध स्थान में पुष्प क्षेपण करना नाम पूजा है–

सब्भावासब्भावा । दुविहा ठवणा जिणेहि पण्णत्ता ॥
सायारवंतवत्थुम्मि । जं गुणारोवणं पढमा ॥ ३८३ ॥

अर्थ–सद्भाव और असद्भाव दो प्रकारकी स्थापन जिना भगवान ने कही है, साकार वस्तु में भगवान् के गुणोंका आरोपण करना सद्भावस्थापना है—

अक्खयवराडउ वा । अमुगो एसोत्ति णीयबुद्धीए ॥
संकप्पिऊण वयणं । एसा विणेया असब्भावा ॥ ३८४ ॥

अर्थ–अक्षत वा कमल के बीज या किसी फूल में यह संकल्प करना कि यह अमुक देवता है और वैसाही उच्चारण करना इस को असद्भावस्थापना जानो–

हुंडावसप्पिणीए । विदिया ठवणा ण होदि कायव्वा ॥
लोए कुलिंग मइमो- । हिया जदो होयसंदेहो ॥ ३८५ ॥

अर्थ–इस हुंडावसर्पिणी कालमें अतदाकार स्थापना नहीं करनी चाहिये, क्यूंकि अन्य मति वाले भी इस प्रकार की स्थापनाकरते हैं इस कारण बुद्धिको भ्रम उत्पन्न होगा इसमें संदेह नहीं है–

कारावगिंदपडिमा । पइट्ठलक्खणाविहिं फलं चेव ॥
एदे पंचहियारा । णायव्वा पढमठवणाया ॥ ३८६ ॥

अर्थ–सद्भावस्थापना में पांच अधिकार हैं, कारापक अर्थात प्रतिष्ठा करानेवाला, इंद्र अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य, प्रतिमा, प्रतिष्ठाके लक्षणकी विधि, और प्रतिष्ठाकाफल–

भागी वच्छलपहा- । वणाखमासच्चमद्दवोवेदो ॥
जिणसासणगुरुभत्तो । सुत्ते कारावगो भणिदो ॥ ३८७ ॥

अर्थ-भाग्यवान्, वात्सल्यगुणयुक्त, प्रभावनावान, क्षमासत्य, मार्दव गुणवाला, देवगुरुशास्त्रकी भक्ति करनेवाला ऐसा पुरुष कारापक होसक्ताहै यह शास्त्र में कहाहै-

देसकुलजाइसुद्धो । णिरूवमांगो विध्दसम्मत्तो ॥
पढमाणुजोगकुसलो । पइट्ठलक्खणविहिविदाणू ॥ ३८८ ॥
सावयगुणोववेदो । उवासयज्झयणसत्थथिरवुद्धी ॥
एवंगुणो पइट्ठाइरिउ । जिणसासणे भणिउ ॥ ३८९ ॥

अर्थ-देश, कुल, जाति, आचार, विचार शुद्धहो, सुंदररूपहो, सम्यक्त्व शुद्ध और अतीचार रहितहो, प्रथमानुयोग शास्त्रको अच्छी तरह जानताहो, प्रतिष्ठाकी लक्षण विधिमें विद्वान्हो, जिसमें श्रावक के गुणहैं उस उपासकाध्ययन शास्त्रको भलीभाँति जानताहो, जैन शास्त्रमें प्रतिष्ठाचार्यके यह गुण वर्णन किये गयेहैं-

मणिकणयरयणरुप्पय- । पित्तलमुत्ताहलोवलाइहिं ॥
पाडिमालक्खणविहिणा । जिणाइपडिमा घडाविज्जा ॥ ३९० ॥

अर्थ-मणि, सोना, रूपा, पीतल, मोती और पत्थर आदिमें जिन भगवान्के लक्षण बनवाकर प्रतिमा बनवावे-

वारहअंगंगी जा । दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा ॥
चोद्दहपुव्वाहरणा । ठावेयव्वा य सुयदेवी ॥ ३९१ ॥
अहवा जिणागमं पु- । त्थएसु सम्मं लिहाविऊण तउं ॥
सुहतिहिलग्गमुहूत्ते । आरंभो होइ कायव्वो ॥ ३९२ ॥

अर्थ-द्वादशांग शास्त्र जिसके अंगहैं, सम्यक् दर्शन जिसका तिलकहै, सम्यक् चरित्र जिसके वस्त्रहैं, और चौदह पूर्व शास्त्र जिसका अलंकार है ऐसी श्रुत देवी प्रथक स्थापन करै वा कोई जैन शास्त्र भले प्रकार लिखवाकर रक्खै, और शुभतिथि शुभलग्न और शुभमहूर्त में आरम्भ करै-

अट्ठदसहत्थमत्तं । भूमिं संसोहिऊण जइणाए ॥
तस्सुवरि मंडवं पुण । कायव्वो तप्पमाणेण ॥ ३९१ ॥

अर्थ-अठारह हाथ लम्बी चौड़ी भूमिको यत्नके साथ शुद्ध करके उसके ऊपर उसहीके प्रमाण मंडप बनावै-

लउतोरणचउद्दारो- । वसोहिउ विविहवत्थकयभूसो ॥

धूयंतधयवडाउं । णाणापुप्फोवहारड्ढो ॥ १९४ ॥

अर्थ-मंडप ऐसा बनावे जिसके चारोंतरफ चार तोरण (मह-राबदार दरवाजे) और चारद्वार होवैं, जो नाना प्रकार के वस्त्रों से भूषितहों, जिसके ऊपर ध्वजापताका हवासे हिल रहीहों और जिसकी भूमिपर नानाप्रकार के फूल बिखर रहेहों ।

लंबंतकुसुमदामो । वंदणमालाहिभूसियदुवारो ॥

दारुवरि उभयकोणे- ।सु पुण्णकलसेहि रमणीउं॥ १९५ ॥

अर्थ-जिसमें जगह २ फूलोंकी माला लटकरही हों जिसका द्वार वन्दन मालाओंसे सजाहुआ हो और जिसके द्वारके दोनों कोणोंपर जलसे भरे हुए कलश रखेहों और उनसे वह शोभनीक होवै ॥

तस्स बहुमज्झदेसे । पइट्ठसत्थम्मि उत्तमाणेण ॥

समचउरस्सं पीठं । सव्वत्थ समं च काऊण ॥ १९६ ॥

अर्थ-तिस मंडपके मध्यमें (बीचों बीच) प्रतिष्ठा शास्त्र में कहे प्रमाण चौकोर और सर्व तरफ से समान ऐसी वेदी बनावे ॥

चउसु वि दिसासु तोरण- । मालोववेददाराणि ॥

छत्तावत्ताणि तहा । दिट्ठाणि रइऊण कोणेसु ॥ १९७ ॥

अर्थ-तिस वेदीकी चारों दिशामें तोरण और वन्दनमाला कर युक्त चार द्वार बनावे तथा वेदीके चारों कोणोंपर छत्रके आकार सुन्दर गोल चित्रोंकी रचना करे ।

पडिवीण णेत्तपट्टावरहिं । वत्थेहिं बहुविहेहिं तहा ॥

उल्लोविऊण उवरिं ।चंदोवयमाणिविहाहिं ॥ १९८ ॥

अर्थ-तिस वेदीके ऊपर नाना प्रकार के सुन्दर चमकीले वस्त्रों से वेष्ठित तथा रत्नो की किरणों से घिरा हुआ अर्थात् रत्नजड़ित चन्दोआ तानै-

संभूसिऊण चंदउ- । वण्ण वरेहिं सरलेहिं ॥

मुत्तादामेहिं तहा । किंकिणिजालेहिं विविहेहिं ॥ १९९ ॥

अर्थ-चन्दोआ, उत्तम सरल मोतियोंकी माला और नाना प्रकारकी छोटी २ घंटियोंके समुह से वेदी के ऊपर मंडप शोभित करैं-

छत्तेहि य चमरेहि य । दप्पणभंगाररतालवट्टेहिं ॥
कलसेहि पुप्फवडिलिय । सुवइठयदीवणिवेहाहिं ॥ ४०० ॥

अर्थ-और छत्र, चमर दर्पण, झारी, पंखा, पुष्पमाला गले में पड़े हुए कलश स्वस्तिक (सांतिया) और दीप समूह इन मङ्गलद्रव्योंसे मंडपको भूषित करै ॥

एवं रयणं काउण ! तउ अभ्भंतरम्मि रइऊण ॥
विविहेहि वहुभंडेहिं । वेईयाचउसु कोणेसु ॥ ४०१ ॥

अर्थ-इसप्रकार ऊपर कहे प्रमाण रचना करके तिस वेदीके अन्दर चारों कोणों में नाना प्रकार के बहुत से बरतन भांडे स्थापित करै ।

इंदो तह दायारो । पासुयसलिलेण धारणादिणेहे ॥
पक्खालिऊण देहं । पच्छा भोत्तूण महुरयणं ॥४०२॥

अर्थ-इसके पश्चात् इन्द्र अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य और दाता अर्थात् प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान दोनों उपवास से पहिले दिन प्रासुक जल से स्नान करके मधुर अन्नका भोजन करैं ॥

उववासं पुण पोसह । विहिणा गहिऊण गुरुसयासम्मि ॥
णवधवलवत्थभूसो । सिरिखंडविलित्तर्व्वंगो ॥ ४०३ ॥

अर्थ-फिर नवीन उज्ज्वल वस्त्र पहन कर और सर्व अंग में चन्दन का लेप करके गुरुके निकट विधिपूर्वक प्रोषधोपवास ग्रहण करै ॥

आहरणवासियाहि । भूसियसंगो सयबुद्धीए ॥
सक्को हमक्वियप्पएहिं । विसेज्ज जग्गावणीं इंदो ॥ ४०४ ॥

अर्थ-(इसके पश्चात्) गहने कपड़े आदिसे सजाहुआ है अंग जिसका ऐसा वह प्रतिष्ठाचार्य अपने मनमें "मैं इन्द्रहूं" ऐसी कल्पना करता हुवा यज्ञभूमिमें प्रवेश करै।

पुव्वुत्तवेइमज्झे । लिहज्ज चुण्णेण पंचवण्णेण ॥
पिहुकण्णियं पइठा- । कमावविहिणा सुकंदुत्थं [?] ४०५

अर्थ-पूर्वोक्त वेदीके मध्यमें, पांच वर्णके रत्नोंके चूर्णसे, प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार, मोटी कर्णिका वाला सुन्दर कमल खेंचे ।

रंगावलिं च मज्झे । ठविज्ज सियवत्थपरिवुडं पीठं ॥

उच्चदेसेसु तह पइठो- । वयरणदव्वं च ठाणेसु ॥ ४०६ ॥

अर्थ–और रंगावली खेंचकर मध्यभागमें सफेद वस्त्र से ढकी हुई वेदी स्थापित करै और ऊंचे २ स्थानोंपर प्रतिष्ठा के योग्य द्रव्य स्थापन करै।

एवं काऊण तर्ऊ । इसाणदिसाए वेइए दिव्वं ॥
रइऊण एह्वणपीठं तस्य य मज्झम्मि ठावेज्जो ॥ ४०७ ॥

अर्थ–इस प्रकार कार्य करनेके पश्चात् ईशान दिशामें एक सुन्दर वेदी तय्यार करके उसके मध्यमें एक स्नान पीठ (स्नान करानेकी चौकी या आसन) स्थापन करै।

अरुहाईणं पडिमं । विहिणा संठाविऊण तस्सुवरिं ॥
धूलीकलसाहिसेयं । कराविये सुत्तहारेण ॥ ४०८ ॥

अर्थ–उस स्नान पीठपर श्रीअरहंतादिककी प्रतिमा विधिपूर्वक स्थापन करके तिस प्रतिमा का सूत्रधार (कारीगर) द्वारा धूलीकलश तीर्थक्षेत्र वगैरः की मिट्टी तथा धानके चूर्ण वगैरःसे भराहुआ कलशसे अभिषेक करावै।

वत्थादियसम्माणं । कायव्वं होदि तस्स सत्तीए ॥
पेखणयविहिं ज मंगल-। वयणं कुज्जा तर्ऊ कमसो ॥

अर्थ–फिर उस कारीगर को अपनी शक्तीके आनुसार वस्त्रवगैरः देकर उसका सन्मानकरै और इसके बाद उसको रुखसत करै और मंगल शब्दकरावै।

सप्पाउग्गुवयरणं । अप्पसमीवं णिवसिऊण तर्ऊ ॥
आगारसुद्धिं कुज्जा । पइठ्ठसत्थुत्तमग्गेण ॥४१० ॥

अर्थ–इसके पश्चात् पहले कहे हुए अर्थात उच्च स्थानमें स्थापित किये हुए प्रतिष्ठा के योग्य द्रव्यको अपने पास रखकर प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार मंदिर शुद्धि करै–

एवं काऊण रवो । खुहियसमुद्देहि गज्जमाणेहिं ॥
वरभेरिकरडकाहल- । जयघंटासंखणिवहोविं॥४११॥

अर्थ–इस प्रकार मंदिर शुद्धि करनेके पश्चात उमंडे हुए समुद्र की समान गर्जने वाले बहुतसे नगारे, करंड, काहल, जय घंटा और शंखोंका शब्द करावै अर्थात ये बाजे बजवावै।

गुलगुलंतेहि तिविलेहिं । कंसतालेहि झमझमंतेहिं ॥

घुमंतपडहमद्दल- । हुडुकमुक्खेहि विविहेहिं ॥ ४१२ ॥

अर्थ-गुल गुल शब्द करनेवाले तबले, झम झम शब्द करने वाली कांसी की झांझ और घुम घुम शब्द करने वाले ढोल मृदंग दुंदुभि आदि अनेक प्रकारके बाजे बजावे ।

गज्जंतेहि संधिबंधा- । इएहिं गिएहि वहुपयारेहिं ॥
वीणावंसेहि तहा । आणयसद्देहिं रम्मेहिं ॥ ४१३ ॥

अर्थ-संधि, बंधन और पड़दे आदि ठिकानों से जिनमें अनेक प्रकारके गीतों की गर्जना निकलती है ऐसी बीण, बांसुरी तथा रमणीक ढोलक बजवावे ।

वहुहावभावविब्भम- । विलासकरचरणतणुवियारेहिं ॥
एव्वंतु णवरसेहि । भिएणणाडएहि विविहेहिं॥४१४॥

अर्थ-अनेक प्रकारके हाव, भाव, विभ्रम, विलास तथा हाथ, पैर और शरीरकी मटकाने चटकाने रूप चेष्टा से नवरसयुक्त नृत्य करावै और अनेक प्रकारके भिन्न २ नाटक करावै ।

थोत्तेहि मंगलेहि य । उच्चारसएहि महुरवयणस्स ॥
धम्माणुरायरत्त- । स्स चाउवण्णस्य संघस्स ॥४१५॥
भत्तीए पिच्छमाणस्स । तओ उच्चाइऊण जिणपडिमं ॥
ऊसियासियायवत्तं । सियचामरधूयमाणसव्वंगो ॥ ४१६ ॥
आरोविऊण सीसे । काउण पयहिणं जिणगेहस्स ॥
विहिणा ठविज्ज पुव्वु- । त्तवेइमज्झपीठम्मि ॥ ४१७ ॥

अर्थ—इस के पश्चात् धर्म के विषें लवलीन ऐसा जो मुनी आर्यिका, श्रावक श्राविका रूप चार प्रकार का संघ तिसके मंगलीक स्तोत्रों और सैंकड़ों मधुर उच्चारणके साथ श्रीजिनप्रतिमा को जिसके ऊपर सफैद छत्र फैलरहाहै और सर्व अंगपर सफैद चमर ढुलरहे हैं, भक्ति पूर्वक उठावै और मस्तकपर धारण करके जिन मंदिरकी प्रदक्षिणा करै और फिर उस प्रतिमाको पूर्वोक्त वेदी के मध्यमे जो पीठ हैं उसपर विधि पूर्वकस्थापनकरै ।

चिंतेज्ज जिणगुणरो- । वणं कुणंतो जिणंदपडिबिंबे ॥
इट्ठे लग्गस्सुदए । चंदणतिलयं तओ दिज्जा ॥ ४१८ ॥

अर्थ-और जिन प्रतिमा विषै जिनेंद्र के गुणों का आरोपणकरता

हुआ तिष्ठै पश्चात शुभमुहूर्त में तिस प्रतिमाके मस्तकपर चंदन का तिलक करै।

सव्वावयवेसु पुणो। मंतरणासं कुणिज्ज पडिमाए ॥
विविहच्चणं च कुज्जा। कुसुमेहिं बहुपयारेहिं ॥ ४१९ ॥

अर्थ–इसके बाद प्रतिमाके सर्व अंगोंमें मंत्रोंका निक्षेप करै अर्थात् मंत्र लिखै और नाना प्रकारके पुष्पों से अनेक प्रकारका पूजन करै।

दाऊण मुहपडं धवल-। वत्थजुयलेण मयणफलसहियं ॥
अक्खयचरुदीवाइ-। धूवेहिं फलेहिं विविहेहिं ॥ ४२० ॥
बलिवत्तिएहिं जुवारे-। हि य सिध्दत्थपण्णरुक्खेहिं ॥
पुव्वुत्तुवयरणेहि य। रइज्ज पुज्जं सविहवेण ॥ ४२१ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर दोहरे सफेद वस्त्रसे प्रतिमाको ढांककर अक्षत, नैवेद्य, दीप, धूप और मदनफल सहित नाना प्रकार के फलों वगैरःसे तथा बलि तिल सिद्धार्थ वृक्षकेपत्र और पूर्वोक्त उपकरणों से अपनी शक्ति अनुसार पूजा करै॥

रत्तिं जागिज्ज पुणो। तिसट्ठिसलायपुरुसकहाहिं ॥
संघेण सयं पुज्जं। पुणो वि कुज्जा पहायम्मि ॥ ४२२ ॥

अर्थ–फिर उस रात्रिको त्रेशठ शलाका पुरुषोंकी कथा वार्ताके साथ जागरण करै और फिर प्रभातको संघके साथ पूजा करै।

एवं चत्तारि दिणा-। णि जाव कुज्जा तिसंझ जिणपुज्जं ॥
णेत्तुम्मीलणपुज्जं। चउत्थएहवणं तहा कुज्जा ॥ ४१३ ॥

अर्थ–इस प्रकार चार दिनतक तीन २ वक्त श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करै। उसके पश्चात् नेत्रोन्मीलन पूजा तथा चौथा अभिषेककरै

एयं एहवणं काउण। सत्थमग्गेण संघमज्झम्मि ॥
तो वक्खमाणविहिणा। जिणपयपूयाइ कायव्वा ॥ ४२४ ॥

अर्थ–इस प्रकार शास्त्रके अनुसार संघके मध्य में (प्रतिमाका) अभिषेक करकै उसके पश्चात् आगे कहीहुई विधिके अनुसार जिनेन्द्रके चरणकी पूजा करनी चाहिये।

गहिऊण सिसिरकरकिर-। णणियरधवलं रयणभिंगारं ॥

मोत्तियपवालमरगय- । सुवण्णमणिखचियवरकंठं ॥ ४२५ ॥
सुयवुत्तकुसुमकुवलय- । रजपिंजरसुरहिविमलजलभरियं ॥
जिणचरण कमल पुरउं । खविज्जउ तिण्ण धाराउ ॥ ४२६ ॥

अर्थ–जो चन्द्रमाकी किरणोंके समूह समान शुक्लवर्ण को धरने वालीहै, जिसका कंठ मोती, मूंगा, मरकत, सुवर्ण और रत्नोंसे जड़ा हुआहै और जिसमें शास्त्र में कहेहुए फूलों और कमलोंके मकरन्द (पराग) से सुगंधित हुआ निर्मल जल भरा हुआहै, ऐसी रत्नझारी हाथमें लेकर श्रीजिनेंद्रके चरणकमल के सन्मुख तीन धारा क्षेपण करै ।

कप्पूरकुंकुमायरु- । तरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण ॥
वरवहलपरिमलामो- । यवासियासासमूहेण ॥ ४२७ ॥
वासाणुयग्गसंपत्त- । मयमत्तालिरावमुहरेण ॥
सुरमउडघट्टिजरणं । भत्तीए समलहिज्ज जिणं ॥ ४२८ ॥

अर्थ जिसमें कपूर, केसर, अगर और तरुष्क (एक प्रकारका सुगंध द्रव्य) मिले हुए हैं जिसकी उत्तम बहुतसी सुगंधके प्रमोदसे सर्व दिशा सुगंधित होरही हैं और जिसकी सुगंध से रास्ते में भौंहरे गुंजार कर रहे हैं, ऐसे चंदनके रससे भक्तिपूर्वक श्री जिनेंद्रका, जिनके चरणों पर देवोंके इन्द्र मस्तक रगड़ते हैं स्पर्शन करावे अर्थात् तिस प्रतिमा के गंधलेपन करै ॥

ससिकंतखंडविमलेहिं । विमलजलासित्तघइसुयंधेहिं ॥
जिणपडिमपइठयज्जिय- । विसुध्दपुण्णंकुरेहिं च ॥ ४२९ ॥
वरकलममसालितंदुल- । चयेहिं सुअंडियदीहसयलेहिं ॥
मणुयसुरासुरमहियं । पुज्जिज्ज जिणंदपयजुयलं ॥ ४३० ॥

अर्थ–चंद्रकान्तमणि के खंड प्रमाण स्वच्छ,निर्मल जलसे धोये हुए अत्यंत सफेद और सुगंधित, मानो जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठासे उत्पन्न हुए निर्मल पुण्य के अंकुरही हैं ऐसे, अखंड और लांबे जो उत्तम कलमी धानके चावल हैं उनसे, मनुष्य, सुर और असुरों कर पूजित जो श्री जिनेंद्र के चरण युगल हैं तिनकी पूजा करैं ।

मालइकयंवकणया- । रियप्पयासोयवलतिलएहिं ॥

मंदारणायचंपय- । पउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ४३१ ॥
कणवीरमल्लियाहिं । कंचरणारमचकुंदकिंकराएहिं ॥
सुरवणजजुहीयापारि- । जातयजासवणटगरेहिं॥४३२॥
सोवण्णरूवमेहिय । मुत्तादामेहिं बहुवियप्पेहिं ॥
जिणपयपंकयजुयलं । पुज्जिज्ज सुरिंदसयमहिलं ४३३।

अर्थ–मालती, कदम्ब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, तिलक, मन्दार, नागचम्पा, कमल, निर्गुंडी, कण बीर, मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकर, कल्पवृक्ष, जुही, पारिजात, जासवन और तगर वगैरह के फूलों से तथा सोने चांदीके फूलों से और नाना प्रकार के मोतियोंकी मालाओं से देवेंद्रों कर पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्र के दोनों चरण कमलकी पूजाकरै ॥

दहिदुग्घसप्पिमिस्सेहिं । कलमभत्तेहिं वहुप्पयारेहिं ॥
तेवट्ठिविंजणेहि य । वहुविहप्पक्कण्णभेएहिं ॥ ४३४ ॥
रौप्पसुवण्णकंसा ।इथालिणिहिएहि विविहभक्खेहि ॥
पुज्जं विच्छारिज्जो । भत्तीए जिणिंदपयपुरउ ॥४३५॥

अर्थ–दही, दूध और घीसे मिलेहुए नानाप्रकार के चावलों के भातसे, शाक और व्यंजनों से तथा वहुत प्रकार के पक्वान्नोंसे इस प्रकार सोने, चांदी, कांसी वगैरः के थालों में रखे हुए अनेक प्रकार के खाने योग्य पदार्थों से भक्तिपूर्वक श्रीजिनेंद्र के चरणो के आगे पूजा करै ।

दीवेहिं णियप्पहोहामिय- । कतेउहिं धूमरहिएहिं ॥
मंद चलमंदाणिल- । वसेण णिच्चं अच्चणं कुज्जा ॥ ४३६ ॥
घणपडलकम्मणिवह- । व्व दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
जिणचरणकमलपुरउ । कुणिज्ज रयणं सुभत्तीए ॥ ४३७ ॥

अर्थ–अपनी प्रभासमूह से सूर्य के समान तेजको धरनेवाले, धूमसे रहित, धीरे २ चलती हुई मन्द पवन से पूजन करनेवालों की तरह नृत्य करते हुए और मेघपटल के समान कर्मरूप अंधकार के समूह को अपने प्रकाश से दूरकरने वाले दीपकों से जिन भगवान् के चरणकमलों के आगे रचना करै अर्थात् दीप से पूजा करै ।

कालायरुणहचंदह । कप्पुरसिल्हारसाइदव्वेहिं ॥
णिप्पएणधूपवत्तिहि । परिमलापत्तयालीहिं ॥ ४३८ ॥
उग्गसिहादेसियस- । ग्गमोक्खमग्गेहि बहलधूमेहि ॥
धूविज्ज जिणिंदपाया- । रविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ ४३९ ॥

अर्थ–काला गरु, अम्बर, कपूर और शिलारस वगैरः द्रव्योंसे बनी हुई, जिसकी सुगंध पर भ्रमर लुब्ध होरहेहैं, और जिस की ऊंची शिखा मानों स्वर्ग मोक्षका मार्ग ही दिखा रही है तथा जिसमें से बहुतसा धुआँ निकलरहा है ऐसी धूपकी वत्तीसे देवों के इन्द्रों कर पूजित जिनेंद्रके दोनों चरणकमलों को सुगंधित करै।

जंबीरमोयदाडिम- । कवित्थपनसनालिएरेहिं ॥
हिंतालतालखज्जू- । रविंवणारंगचूदेहिं ॥४४०॥
पूईफलतिंदुल आमल-।यजंवुविल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं॥
जिणपयपुरउ रयणं । फलेहिं कुज्जा सुपक्केहिं ॥ ४४१ ॥

अर्थ–जम्वीर, केला, दाडिम, कपित्थ, पनस, नारियल, हिंताल, ताल, खजूर, किंदूरी, नारंगी, आम, सुपारी, तिन्दुल, आमला, जामन, विल्व इत्यादिक अनेक प्रकारके सुगंधित, मीठे और पक्के हुए फलोंसे जिनेंद्रके चरणों के आगे रचना करै।

अट्ठविहमंगलाणि य । वहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
धूवदहणाइ तहा । जिणपूयत्थं विसीरिज्जइ ॥४४२॥

अर्थ–आठ प्रकारके मंगल द्रव्य और अनेकप्रकार पूजाके उपकरण रूप द्रव्य तथा धूपदान वगैरः जिनपूजा करने के वास्ते वितरण करै ॥

एवं चलपडिमाए । ठवणा भणिया थिराए य ॥
णवर विसेसो आगर-।सुद्धि कुज्जा सुठाणम्मि॥४४३॥
चित्तपडलेप्पपडिमा- । ए दप्पणे दाविऊण पडिविंवं ॥
तिलयं दाऊण तऊ- । मुहवत्थं दिज्ज पडिमाए ॥
आगरसुद्धिं च करेज्ज। दप्पणे अहवा अण्णपडिमाए ॥
एत्तवमत्तविसेसो । स विही जाणेय पुव्वो य ॥ ४४५ ॥
एवं चरित्तणाणं । पि कट्टिमाकट्टिमाण पडिमाणं ॥
जं कीरइ वहुमाणं । ठवणापुज्जं हि तं जाणे ॥ ३४६ ॥

अर्थ-इसप्रकार चल प्रतिमाकी स्थापना कही गई है। स्थिर प्रतिमाकी स्थापना भी इसी प्रकार की जाती है केवल इतना विशेषहै कि गृहशुद्धि सुस्थानमें करै और चित्रामकी तथा वस्त्र-वा भींतपर खेंचीहुई जो जिन प्रतिमाहै तिसका प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखकार उसके मस्तकपर तिलक करै और उसके पश्चात वस्त्रसे तिस प्रतिमाको ढांपदेवै। गृहशुद्धि दर्पण में करै अथवा अन्य प्रतिमासे करै केवल इतनाही भेद है अन्य नहीं। बाकी सबविधि वहीहै जो पाहिलै कहीहै। इसीप्रकार सम्यक् चारित्र, सम्यग्ज्ञान और कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाओंकी बहुत आदर पूर्वक पूजा की जाती है उसको स्थापनापुजा जाननी चाहिये। (इस विषयका विशेष वर्णन प्रतिष्ठातिलक आदि ग्रंथों से जानना चाहिये)

जे पुव्वसमुद्दिट्ठा। ठवणापुयाए पंच अहियारा॥
चत्तारि तेसु भणिया। अवसाणे पंचमं भणिमो॥ ४४७॥

अर्थ-पहले (गाथा ३८७ में) जो स्थापनापूजाके पांच अधिकारोंके नाम कहे गये हैं उनमें से चार अधिकारों का वर्णन तो किया गया अब अन्तमें पांचवे अधिकारका वर्णन करते हैं॥

दव्वेण य दव्वस्सय। जा पूजा जाण दव्वपूजा सा॥
दव्वेण गंधसलिला-। इपुव्वभणिएण कायव्वा॥ ४४८॥

अर्थ-द्रव्यसे और द्रव्यकी जो पूजा की जाती है उसको द्रव्य-पूजा समझना चाहिये, द्रव्यसे पूजा पूर्व कहेहुवे जल चंदनादिसे करनी चाहिये।

तिविहा दव्वेपूजा। सचित्ताचित्तमिस्सभेएण॥
पच्चक्खजिणाईणं। सचित्तपूजा जहाजोग्गं॥ ४४९॥

अर्थ-द्रव्यकी पूजा सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त) भेदसे तीन प्रकार है। प्रत्यक्ष जिनेंद्र वगैरः की जो पूजाहै वह सचित्त पूजा है।

तेसिं च सरीराणं। दव्वसुदस्स वि अचित्तपूजा सा॥
जा पुण दोण्हं कीरइ। णायव्वा मिस्सपूजा सा॥ ४५०॥

अर्थ-तिन जिनेंद्रदेवोंके शरीरोंकी तथा द्रव्यश्रुत (शास्त्र) की

जो पूजाहै वह अचित्तपूजा जाननी और जो दोनोंकी पूजा की जाती है वह मिश्रपूजा जाननी चाहिये।

अह वाआगमणोआगमाइ भेएण बहुविहं दव्वं ॥
णाऊण दव्वपूजा। कायव्वा सुत्तमग्गेण ॥ ४५१ ॥

अर्थ—अथवा आगम द्रव्य, नो आगम द्रव्य इत्यादि भेदसे अनेक प्रकार द्रव्यको जानकर शास्त्रमार्गके अनुसार द्रव्यपूजा करनी चाहिये।

जिणजम्मणणिक्खवण- । णाणुप्पत्तिमोक्खसंपत्ति- ।
णिसिहीसु खेत्तपूजा । पुव्वविहाणेण कायव्वा ॥ ४५२ ॥

अर्थ—जिनेंद्रकी जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न होने की भूमि और मोक्षप्राप्त होने की भूमि, इतने स्थानों में पूर्वकही हुई विधि के अनुसार (जलचंदनादिसे)पूजा करनी चाहिये इसका नाम क्षेत्रपूजाहै।

गब्भावयारजम्मा- । हिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं ॥
जम्मि दिणे संजादं । जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥४५३॥
इक्खुरससप्पिदहिखी- । रगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं ॥
णिसिजागरं च संगी- । यणाडयाईहिं कायव्वं ॥ ४५४ ॥
णंदीसरट्ठदिवसे- । सु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ॥
जं कीरइ जिणमहिमा। विण्णेया कालपूजा सा ॥४५५॥

अर्थ—जिस दिन भगवान्के गर्भावतार, जन्माभिषेक, दीक्षाकल्याण, ज्ञान कल्याण और मोक्षकल्याण हुएहों उस दिन इक्षुरस, घी, दूध, दही और गंध जलसे भरेहुए कलशों से जिनदेवका अभिषेक तथा रात्रिको भगवान्के गुणोंका गान और नाटक आदि सहित जागरण करै। इसी प्रकार नन्दीश्वर पर्वके आठदिनों में तथा और अनेकपर्वों में जो जिनेंद्रका अभिषेकादि किया जाताहै उसको कालपूजा कहते हैं।

काऊणाणंतचउ- । ट्ठयाइगुणकित्तणं सुभत्तीए ॥
जं वंदणं तियालं। कीरइ भावच्चणं तं खु ॥ ४५६ ॥

अर्थ—जिनेंद्रके अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख औ अनंत वीर्यआदि गुणोंकी उत्तम भक्तिके साथ स्तुति करके जो त्रिकाल

बन्दना कीजाती है वह निश्चयकर भाव पूजा है ।

पंचणमोयारेहिं । अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीये ॥
अहवा जिणिंदथोत्तं । वियाण भावच्चणं तं पि ॥ ४५७ ॥

अर्थ-अथवा पंचपरमेष्ठी के नमस्कार से अपनी शक्ति प्रमाण जपकरै वा जिनेंद्रका स्तवन (स्तोत्र) करै, तिसको भी भावपूजा कहते हैं ।

पिंडत्थं च पयत्थं । रूवत्थं रूववज्जियं अहवा ॥
जं झाइज्जइ झाणं । भावमहं तं विणिद्दिट्ठं ॥ ४५८ ॥

अर्थ-अथवा पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत रूपध्यानों का जो ध्यान करना है तिसका भाव पूजन कहा गया है ॥

सियकिरणविप्फुरंतं । अट्ठमहापाडिहारिपरियारियं ॥
झाइज्जइ णियरूवं ॥ पिंडत्थं जाण तं झाणं ॥ ४५९ ॥

अर्थ- अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि आदि आठ महाप्रतिहार्यों से युक्त और चंद्रमाकी किरण समान प्रकाशमान ऐसा जोकेवली भगवान्‌का रूपहै तिसकी निजरूप भावना करके (अपना पिंड तैसाही है ऐसा मनमें जानकरके) जो ध्यान करना है उसको पिंडस्थ ध्यान जानना चाहिये ।

अहवा णाहिं च विय-। प्पिऊण मेरु अहोविहायम्मि॥
झाइज्ज अहोलोयं । तिरियम्मि तीरियं वीयं ॥ ४६० ॥
उड्ढम्मि उ णरलोए । कप्पविमाणाणि खंदपरियंते ॥
गेविज्जाणवगीवं । अणुदिसं हणुपएसम्मि ॥ ४६१ ॥
विजयं च वैजयंतं । जयंतमवराजियं च सव्वत्थं ॥
झाइज्ज मुहपएसे । ललाटदेसम्मि सिद्धसिला ॥ ४६२ ॥
तस्सुवरि सिद्धणिलयं । जयसिहरं जाण उत्तमंगम्मि ॥
एवं जं णियदेहं । झाइज्जइ तं पि पिंडत्थं ॥ ४६३ ॥

अर्थ-अथवा अपने नाभि स्थान में मेरु पर्वतकी कल्पना करकै उसके नीचे अधोलोक का चिन्तवन करै, नाभि के तिर्यक भाग में मध्यलोक की और नरलोक से ऊपर स्कंध (कंधा) पर्यंत स्वर्गलोक के विमानोंकी भावनाकरैतथा ग्रीवामेंनौ ग्रैवेयकोंकी, हनुप्रदेशठोडीमें अनुदिशकी और मुखमें विजय,वैजयंतजयंत,अपरा-

जित और सर्वार्थसिद्धि इन विमानों की भावना करै और ललाट (कपाल) में सिद्धशिला और तिसके ऊपर अर्थात् मस्तक पर जगत्का शिखर अर्थात अग्रभागऐसा सिद्धस्थानको जाने इस प्रकार जो निज देहका ध्यान करना है उसको भी पिंडस्थ ध्यान कहते हैं ॥

जं झाएई उच्चा- । रिऊणपरमेठ्ठिमंत पयकमलं ॥
एयक्खरादि विविहं । पयत्थझाणं मुणेयव्वं ॥ ४६४ ॥

अर्थ–एक अक्षरको आदि देकर अनेक प्रकार परमेष्ठीके मंत्र का उच्चारण करके परमेष्ठी के चरणकमल का जो ध्यान किया जाताहै उसको पदस्थध्यान जानना चाहिये ॥

भावार्थ–ॐ, सिद्ध, अर्हं अरहंत, असिआ आउसा, अरहंतासिद्ध, "अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू" वा "अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः" और "णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं" इत्यादि मंत्रों का जो ध्यान करनाहै वह पदस्थ ध्यान है ॥

सुण्ण अयारपुरउं । झाइज्जो उड्ढरेह विंदुजुयं ॥
पावांधयारमहणं । समंतउ फुरियससिभेयं ॥४६५ ॥

अर्थ–अकारके आगे ऊर्ध्वरेफ व विन्दु (अनुस्वार) इनसे युक्त तथा पापरूपी अंधकारका नाशकरनेवाला और चन्द्रमाकी समान चहुंओरसे प्रकाशमान ऐसाजो हकार (अर्हं) है वह ध्यान करने योग्यहै ॥

असिआउसासुवण्णा । झायव्वाणंतसत्तिपण्णाउं ॥
चउपत्तकमलमज्झे । पढमाइकमेण णिसिऊण ॥ ४६६ ॥
ते चिय वण्णा अट्ठ- । दलपंचकमलाण मज्झदेसेसु॥
णिसिऊण सेसपरमे- । ट्ठि अक्खरा चउसु पत्तेसु ॥ ४६७ ॥
रयणत्तयपढमा ए । वण्णा णिसिऊण सेसपत्तेसु ॥
सिरवयणकंठहियए । णाहिपएसम्मि झायव्वा ॥ ४६८ ॥
अहवा णिलाडदेसे । पढम विदियं विसुद्धदेसम्मि ॥
दाहिणदिसाइ णिसिऊ- । ण सेसकमलाणि झाइज्जो ॥ ४६९ ॥

अर्थ-जिनकी शक्ति अनंत है ऐसे अ सि आ उ सा ये पांच उत्तम वर्ण चार पांखड़ीके कमलमें क्रम से स्थापन करके अर्थात् कमल के मध्यभाग कर्णिकामें "अ" (अरहंत) तिसके बाहर पूर्वके पत्रपर 'सि' (सिद्ध) दक्षिणके पत्रपर 'आ'(आचार्य) पश्चिमके पत्रपर'उ'(उपाध्याय) और उत्तरकी ओरके पत्रपर 'सा' (साधु) ऐसे क्रमसे स्थापन करके तिनका ध्यान करै। और तिनही अक्षरोंको आठ पांखड़ीके कमलमें (चार पांखड़ीके कमल प्रमाण) स्थापन करके बाकीके चार पत्रोंमें 'द' (दर्शन) ज्ञा (ज्ञान) चा (चारित्र) त (तप) ये चार वर्ण क्रमसे स्थापन करके मस्तक, मुख, कंठ, हृदय और नाभि इन पाँच स्थानोंमें पाँच अष्टदल कमलका ध्यान करै अथवा पहला कमल कपालपर स्थापन करके बाकीके कमल मस्तक पर व तिसके दक्षिण आदि शुद्ध प्रदेशोंमें स्थापन करके तिनका ध्यान करना चाहिये।

अट्ठदलकमलमज्झे। झाएज्ज ह दुरेहबिंदुजुयं ॥
सिरिपंचणमोकारे-। हिं वलइयं पत्तरेहासु ॥ ४७० ॥
णिसिऊण णमो अरहं-। ताणं पत्ताइमट्ठवग्गेहिं ॥
भणिऊण वेढिऊण य। मायाबीएण तं तिऊणं॥४७१॥

अर्थ-आठ पांखड़ीके कमलकी कर्णिका पर दो रेफ और एक बिंदु इनसे युक्त ऐसा 'ह' (र्हं) स्थापन करके और तिस कर्णिकाके बाहर पत्रोंके भीतर वलय करके तिस वलयमें 'णमोअरहंताणं' इत्यादि पंच नमस्कार मंत्र वलयाकार स्थापन करै और आठ पत्रों पर क्रमसे आठवर्ग स्थापन करके तथा त्रिकोणको ह्रींबीज से वेष्टित करके तिस कमलका ध्यान करै।

आयासफलिहसंणिह-। तणुप्पहासलिलणिहिणिवुड्डंतं ॥
णरसुरतिरीडमणिकिर-। णसमूहरंजियपयपंवुरुहो॥४७२॥
वरअट्ठपाडिहारेहिं। परिउडो समवसरणमज्झगउ ॥
परमप्पाणंतचउ-। क्कयाणिउ पवणमग्गठो ॥ ४७३ ॥
एरिस उकिठय परि-। वारवाज्झउ खीरजलहिमज्झेव ॥
वरखीरवयणकंदु-। ल्लकाविणयामज्झदेसठो ॥ ४७४ ॥
खीरुवहिसीलिलधारा-। हिसेयधवलीकयंगसव्वंगो ॥

जं झाझ्ज्जइ एवं । रूवत्थं जाण तं झाणं ॥ ४७५ ॥

अर्थ-जोआकाश तथा स्फटिकमणिकी समान स्वच्छ और निर्मल अपनी देहकी कान्तिरूपी समुद्र में निमग्नहै तथानम्रीभूतहुए जो मनुष्य व वदे तिनके मुकुटोंके रत्नोंकी किरणोंसे जिसके चरण कमल चित्रविचित्र रंगके दिखाईदेतेहैं, जो उत्तम आठ प्रातिहार्योंसे वेष्टित,समवसरणके मध्यमें प्राप्त आकाशमें स्थित तथा परिवार करके रहित है और उत्तमशुक्ल वर्णके कमलकी कर्णिका पर विराजमानहुआ ऐसामालूमहोताहै मानों क्षीरसमुद्रके मध्यमें स्थित है तथा क्षीरसमुद्रकी जलधाराके अभिषेकसे जिसकासर्व अंग धवल (शुक्लवर्ण) होगयाहै,ऐसा अनंत चतुष्टयसे युक्त जो उत्कृष्ट परमात्मा है तिसका जो इस प्रकार ध्यान करनाहै उसको रूपस्थ ध्यान जानना चाहिये।

वण्णरसगंधफासे- । हिं वज्जिउं णाणदंसणसरूवं ॥
झाइज्जइ एवं जं । तं झाणं रूवरहियंत्ति ॥ ४७६ ॥
अहवा आगमणोआ- । गमाइभेएहिं सुत्तमग्गेण ॥
णाऊण भावपूजा । कायव्वा देसविरएहिं ॥ ४७७ ॥

अर्थ-वर्ण (रङ्ग), रस, गंध और स्पर्श, इनसे रहित और ज्ञानदर्शनस्वरूप अर्थात् रूपरहित ऐसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका जो चिन्तवन करना वह रूपातीत ध्यानहै। अथवा आगम नोआगम आदिके भेदसे अनेकप्रकारकी भाव पूजा शास्त्रके आधारसे जान कर देशव्रती श्रावकोंको करनी चाहिये।

एसा छव्विहपूजा । णिच्चं धम्माणुरायरत्तेहिं ॥
जहजोग्गं कायव्वा । सव्वेहिं देसविरएहिं ॥ ४७८ ॥

अर्थ-यह छः प्रकारकी पूजा धर्मके विषय अनुराग रखने वाले समस्त देशव्रती श्रावकोंको नित्य विधिपूर्वक करनी चाहिये।

एयारसंगधारी । जीहसहस्सेण सुरवरिंदो वि ॥
पूजाफलं ण सक्को । णिस्सेसं वण्णिउं जह्मा ॥ ४७९ ॥
तह्मा हं णियसत्तीए । थोयवयणेण किं पि वोच्छामि ॥
धम्माणुरायरत्तो । भवियजणो होइजे सव्वो ॥ ४८० ॥

अर्थ-ग्यारह अङ्गके जानने वाले मुनि तथा देवोंके इन्द्रभी हजार

जिह्वासे पूजाके फलको पूरा वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं । मैं अपनी शक्तिप्रमाण थोड़े वचनोंमें कुछ कहता हूँ (तिसको सुन कर) समस्त भव्यजीव धर्मके विषय प्रीति करने वाले होवें ।

कुंथुंभरिदलमेत्ते । जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं ॥
सरिसवमेत्तं पि लहइ । सो णरो तित्थयरं पुण्णं ॥ ४८१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुन्थुम्भरीके पत्र बराबर जिनमंदिर बनाकर उसमें सरसोंके बराबरभी जिनप्रतिमा स्थापन करता है वह तीर्थंकर पदके प्राप्त होने योग्य पुण्य उपार्जन करता है ।

जे पुण जिणंदभवणं । समुण्णयं परिहितोरणसमग्गं ॥
णिम्मावइ तस्स फलं । को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ ४८२ ॥

अर्थ—फिर जो प्राकार (चहारदीवारी) तोरण आदिसे पूर्ण और ऊँचा ऐसा जिनमंदिर बनाताहै तिसका पूरा फल वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ होसकता है ।

जलधाराणिक्खवणे । ण पावलमोहणं हव्वे ॥
णियमण चंदणलेवेण । णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो ॥४८३॥

अर्थ—पूजाके समय जलधाराके छोड़नेसे पापका मैल धोया जाताहै और चंदनका लेपन करनेसे पूजनकरनेवाला भाग्यवान् होताहै—ऐसा नियम जानना ।

जायइ अक्खयणिहिरय- । णसामिउं अक्खएहि अक्खोहो ॥
अक्खीणलद्धिजुत्तो । अक्खयसोक्खं च पावेई ॥४८४॥

अर्थ—अक्षतसे पूजाकरनेवाला ९निधि और १४रत्नों का स्वामी होता है उसको अक्षय आनन्द मिलता है अर्थात् उसके आनन्दमें कभी भंग नहीं पड़ता है और वह अक्षीणलब्धि पाकर मोक्षपदभी प्राप्त करताहै ।

कुसुमेहिं कुसेसयवयण- । तरुणीजणणयणकुसुमवरमाला- ॥
वलयेणच्चियदेहो । जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ४८५ ॥

अर्थ—पुष्पसे पूजाकरनेवाला मनुष्य, कमलकी समान सुंदर मुखवाली स्त्रियोंके नेत्ररूपी पुष्पमालासे जिसकीदेह पूजीगईहै अर्थात् तरुण स्त्रियां जिसको आदरकी दृष्टिसे देखती है ऐसाकामदेव होताहै ।

जायइ णिविज्जदाणे- । ण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥
लावण्णजलहिवेला- । तरंगसंपावियसरी रो ॥ ४८६ ॥

अर्थ–नैवेद्य अर्पण करने वाला मनुष्य, शक्तिमान्, कांतिमान, तेजस्वी और सौन्दर्य रूपी समुद्रकी तरंगोंसे जिसका अंग भीज-गयाहै ऐसा अर्थात् अतिसुंदर होताहै।

दीवेहिं दीवियासे- । सजीवदव्वाइतच्चसब्भावो ॥
सब्भावजणियकेवल- । पईवतेएण होइणरो ॥ ४८७ ॥

अर्थ–दीपसे पूजाकरने वाला मनुष्य, उत्तम भावों के योगसे उत्पन्नहुआ जो केवलज्ञानरूपी सूर्य जिसके तेजसे समस्त जीवादि तत्वोंके प्रकाश करने वाला अर्थात् केवलज्ञानीहोता है।

धूवेण सिसिरयरधव- । लकित्तिधवलियजयत्तउ पुरिसो ।
जायइ फलेहिं संप । त्तपरमनिव्वाणसोक्खफलो ॥ ४८८ ॥

अर्थ–धूपसे पूजा करनेसे मनुष्य, चन्द्रमाकी किरण समान निर्मल कीर्तिसे स्वच्छ किया है तीन जगत जिसने अर्थात जिसकी पुण्य कीर्ति तीन जगतमें फैल रहीहै ऐसा होता है और फलकर पूजा करनेसे परम निर्वाण सौख्य रूपी फलका प्राप्त करनेवाला अर्थात् मुक्त होता है।

घंटाहिं घंटासद्दा- । उलेसु पउरच्छराणमज्झम्मि ॥
संकीडइ सुरसंघा- । यसेविउ वरविमाणेसु ॥४८९॥

अर्थ–जिन मंदिरमें घंटा अर्पण करनेवाला मनुष्य, घंटोंके शब्द से व्याप्त जो स्वर्गोंके विमान तिनमें देवोंके समूहसे सेवा किया गया अर्थात् इन्द्र होकर बहुतसी अप्सराओंके मध्यमें क्रीडा करता है।

छत्तेहि एयछत्तं । भुंजइ पुहवी सवत्तपरिहीणो ॥
चामरदाणेण तहा । विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं ॥ ४९० ॥

अर्थ–छत्र अर्पण करनेसे मनुष्य (अन्यजन्ममें) शत्रु रहित राजा होकर पृथिवीका एकछत्र राज्य भोग करताहै और चमरके दान करनेसे चमरोंसे सेवा कियाजाताहै अर्थात् राजा होताहै।

अहिसेयफलेण णरो । अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं ॥
खीरोयजलेण सुरिं- । दप्पमुहदेवेहिं भत्तीए ॥ ४९१ ॥

अर्थ-जिनेंद्रका अभिषेक करनेके फलसे मनुष्य (अन्यजन्ममें) सुदर्शन मेरुपर सुरेन्द्र वगैरः देवोंसे भक्तिपूर्वक क्षीर समुद्रके जल से अभिषेक किया जाताहै अर्थात तीर्थंकर होताहै।

विजयपडाएहिं णरो। संगाममुहेसु विजइ उ होइ॥
छखंडविजयणाहो। णिप्पडिवक्खो जसस्सी य॥ ४९२॥

अर्थ-श्री जिनमंदिर में विजयपताका अर्पण करने से मनुष्य संग्राम में विजय प्राप्त करने वाला होता है और षटखंड का विजय करने वाला, शत्रुरहित व यशस्वी ऐसा राजा अर्थात् चक्रवर्त्ती होता है।

किं जंपिएण बहुणा। तीसु वि लोएसु किंपि जं सोक्खं॥
पूजाफलेण सव्वं। पाविज्जइ णत्थि संदेहो॥ ४९३॥

अर्थ-बहुत कहनेसे क्याप्रयोजन? तीनलोकमें जितना कुछभी सुखहै वह सब जिनपूजाके फलसे प्राप्तहोताहै, इसमें सन्देह नहींहै।

अणुपालिऊण एवं। सावयधम्मं तओवसाणम्मि॥
सल्लेहणं च विहिणा। काऊण समाहिणा कालं॥ ४९४॥
सोहम्माइसु जायइ। कप्पविमाणेसु अच्चयंतेसु॥
उववायगिहे कोमल-। सुयंधसिलसंपुडस्संते॥४९५॥

अर्थ-इसप्रकार श्रावकधर्म को पालन करके, अन्त में विधि-पूर्वक सल्लेखना करके शांतचित्त से देहका त्याग करने वाला श्रावक सौधर्म आदि अच्युत स्वर्गपर्यंत किसी एक स्वर्ग विमान में जाकर वहांपर जो उपपाद गृह है तिसमें कोमल व सुगंध-शिला के सम्पुट में जन्मलेता है।

अंतोमुहुत्तकाले-। ण तओ पज्जत्तिओ समाणेइ॥
दिव्वामलदेहधरो। जायइ णवजुव्वणो चेव॥ ४९६॥

अर्थ-जन्मलेने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्तकाल में (अहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छहों) पर्याप्ति को प्राप्त होकर सुन्दर पवित्र देहका धरने वाला और नवयौवनवान् (जवान) होजाता है।

समचउरसंठाणो। रसाइधाउहिं वज्जियसरीरो॥
दिणयरसहस्सतेओ। णवकुवलयसुरहिणिस्सासो॥ ४९७॥

अर्थ-तिस देवका शरीर समचतुर संस्थान को लिये हुए होता है और रस, रुधिर, मांसादिक सप्तधातु से रहित होता है तथा वह देव हजारों सूर्योंके तेजप्रमाण तेजस्वी और नवीन कमलों की गंधप्रमाण सुगंधित सांसका लेनेवाला होता है।

पडिवुज्झिऊण सुत्तु- । ठिउव्व संखाइमहुरसदेहिं ॥
दठ्ठूण सुरविभूइं । वंभियहियर्ड पलोएइ ॥ ४९८ ॥

अर्थ-(पश्चात् वह देव वहांपर) शंखवगैरः के मधुर शब्दों से सोकर उठेहुए की तरह जागकर, देवलोक की विभूतिको देखकर चकितचित्त होकर चारों तरफ देखता है।

किं सुमिणदंसणमिणं । ण वेति जा चिठए वियप्पेण ॥
आयंति तक्खणं चिय । थुइमुहला अयाररक्खाई ॥ ४९९ ।

अर्थ-और क्या यह मुझको स्वप्न दिखाई देता है ? वा स्वप्न नहीं है अर्थात् वास्तव में ही ऐसा है, इसप्रकार विकल्प करता हुआ तिष्ठता है, इतने ही में उसीवक्त उस विमान के रक्षक वगैरः देव उसकी स्तुति करते हुए आते हैं।

जयजीवणंदवद्धा- । इचारुसदेहि सोयरम्मेहिं ॥
अच्छरसयाउ वि तर्ड । कुणंति चाडूणि विविहाणि ॥ ५०० ॥

अर्थ-तुम जयवंत प्रवर्तो, जीवन्तरहो, आनंद तथा वृद्धिको प्राप्त होवो इत्यादि कानों को प्यारे लगने वाले सुन्दर शब्दों से सैंकडों अप्सराएं भी अनेक प्रकारसे तिसको आनंदित करती हैं॥

एवं थुणिज्जमाणो । सहसा णाऊण उवहिणाणेण ॥
गंतूण एहाणगेहं । उठणवाविम्हि एहाऊण ॥ ५०१ ॥
आरहणगिहम्मि तर्ड । सोलहसाहूसणं च गहिऊण ॥
पूजोवयरणसहिर्ड । गंतूण जिणालयं सहसा ॥ ५०२ ॥
वरवज्जविविहमंगल- । रवेहिं गंधक्खयाइदव्वेहिं ॥
महिऊण जिणवरिंदं । थुतसहस्सेहि थुणिऊण॥ ५०३ ॥
गंतूण सभगेहं । अणेयसुरसंकुलं परमरम्मं ॥
सिंहासणस्स उवरिं । चिठइ देवेहिं थुव्वंतो ॥ ५०४ ॥
उस्सियसियायवत्तो । सियचामरधुव्वमाणसव्वंगो ॥
पउरच्छराहिं कीडइ । दिव्वठगुणप्पहावेण ॥ ५०५ ॥

अर्थ-इसप्रकार देव, देवांगनाओंसे स्तुति किये जानेपर वह

देव शीघ्रही अवधिज्ञान से अपना सब वृत्तान्त जानकर, स्नान-गृह में जाकर वहां स्नान वापिका (बावड़ी) में स्नान करता है और वहां से आभरणगृह में जाकर सोलह प्रकार के आभूषण (गहने) धारण करनेके पश्चात् पूजाके योग्य उपकरण लेकर शीघ्रता के साथ श्रीजिनमन्दिर को जाता है और वहां पर उत्तम वादित्रों (बाजे) व नाना प्रकार के मंगल शब्दोंके साथ गंध अक्षतादि द्रव्योंसे श्रीजिनेंद्रका पूजन करने और हजारों स्तोत्रों से भगवान्की स्तुति करने के पश्चात्, अनेक देवोंसे भरपूर और परमरमणीक ऐसाजो सभागृह है तिसमें प्रवेश करके देवों से स्तुतिकिया जाता हुआ सिंहासनपर बैठता है। तिससमय सफेद छत्र उसके मस्तकपर विराजताहै और समस्त अंगपर सफैद चमर ढुलते हैं। और फिर देव वहांपर बहुतसी अप्सराओंसे क्रीडाकरता है। और अपने दिव्य अणिमा आदि अष्ट गुणोंके प्रभावसे ॥

दीवेसु सायरेसु य । सुरसरितीएसु सेलसिहरेसु ॥
अखलियगमणागमणो । देवुज्जाणाइसु रमेई ॥ १०६ ॥

अर्थ—द्वीपों, समुद्रों, गंगाआदिनदियोंके तटों, पर्वतोंके शिखरों और नन्दनवन आदि उद्यानों केविषै, गमनागमनका प्रतिबंध(रोक) न होनेसे (यथेच्छ) क्रीडा करताहै । और

आसाढकत्तिए फ- । ग्गुणे य णंदीसरट्ठदिवसेसु ॥
विविहं करेइ महिमं । णंदीसरचेइयागेहेसु ॥१०७॥
पंचसु मेरूसु तहा । विमाणजिणचेइएसु विविहेसु॥
पंचसु कल्लाणेसु य । करेइ पुज्जं बहुवियप्पं॥१०८॥
इच्चाइबहुविणोए- । हिं तत्थ वि गेऊण सगठिई ॥
तत्तो उव्वइ समाणो । चक्कहराइसु जाएइ॥१०९॥

अर्थ—आषाढ, कार्त्तिक और फाल्गुन इनतीन महीनों के विषैं नन्दीश्वर पर्वके आठ दिनों में नन्दीश्वरद्वीपके चैत्यालयोंमे जाकर अनेक प्रकारकी पूजाकरताहै और इसीप्रकारके पंचमेरु,अनेकप्रकार विमानोंके जिनबिम्बतथा जिनेश्वरके पंचनकल्याणक इनठिकानोंमें जाकर अनेक प्रकारकी पूजाकरता है । इन (अनेक प्रकारकी पुण्य-

कारक व आनंद कारक क्रियाओं) को आदि देकर बहुत आनंद के साथ स्वर्गमें अपनी स्थिति को पूरी करके वहांसे चयकर मध्य लोकमें आकर चक्रवर्त्ति आदि पदवीधारक पुरुषोंमें जन्म लेता है अर्थात् चक्रवर्त्ति आदि राजपदवीका धारक होता है।

मोत्तूण मणुयसोक्खं। पस्सिय वेरग्गकारणं किंचि ॥
मोत्तूण रायलच्छी। तणं व गहिऊण चारित्तं ॥ ५१० ॥
काऊण तवं घोरं। लद्धीउ तप्फलेण लद्धूण ॥
अट्ठगुणीसरियं तं। च किं ण सिज्झइ तवेण जए ॥ ५११ ॥

अर्थ-(इसके पश्चात वह महात्मा) मनुष्यलोकके सुखोंको भोगकर किंचित् वैराग्यका कारण पाकर राज्यलक्ष्मीको तृणसमान त्यागकर जिन दीक्षाधारण करके तीव्रतपश्चरण करताहै और तिस तपके फलसे ऋद्धियोंको पाकर अणिमा आदि अष्टगुणोंके ऐश्वर्यको प्राप्तहोताहै। वहकौनसीवस्तु है जो तपसे सिद्धनहींहोती? अर्थात् ऐसा कोई भी कठिनकार्य नहींहै जो तपसे सिद्धनहोसके।

बुद्धी तवो वि लद्धी। विउव्वणलद्धी तहेव उसहीया ॥
रसबलअक्खीणा वि य। रिद्धीउ सत्त पण्णत्ता ५१२ ॥

अर्थ-बुद्धि ऋद्धि, तपऋद्धि, विक्रिया ऋद्धि, ओषधि ऋद्धि, रस ऋद्धि, बल ऋद्धि और अक्षीणमहानस ऋद्धि, ऐसे सातप्रकार की ऋद्धि कहीगई हैं।

अणिमा महिमा लघिमा। पागम्मि वसित्त कामरूवित्तं ॥
ईसत्तपावणं तह। अट्ठगुणा वण्णिया समये ॥ ५१३ ॥

अर्थ-अणिमा (सूक्ष्महोना) महिमा (बड़ाहोना) लघिमा हलकाहोना), प्राकाम्य, वशित्व (वशकरना), कामरूपित्व (इच्छा के अनुसाररूप बनालेना), ईशत्व (प्रभुपणामिलना), और प्राप्यत्व (जोचाहै प्राप्तकरलेना) ये, आठगुणशास्त्रमें वर्णन कियेगयेहैं।

एवं काऊणं तवं। पासुयठाणम्मि तहय गंतूण ॥
पालियंकं बंधित्ता ॥ काउस्सग्गेण वा ठिच्चा ॥ ५१४ ॥
जइ खाइयसद्दिट्ठी। पुव्वं खवियाउ सत्तपयडीउ ॥
सुरणिरयातिरिक्खाऊ। तहि भवे णिट्ठियं चेव ॥ ५१५ ॥
अह वेदगसद्दिट्ठी। पमत्तठाणम्मि अप्पमत्ते वा ॥
सरिऊण धम्मझाणं। सत्तावि णिट्ठवइ पयडीउ ॥ ५१६ ॥

अर्थ-इसप्रकार (वह मुनि) तपश्चरणकरके तथा प्रासुकस्थानमें जाकर पर्यंकासन बांधकर या कायोत्सर्गरूपसे स्थितहोकर, यदि पहले सात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायक सम्यग्दृष्टि होगया हो तौ देव नारक और तिर्यंच इन तीनआयुका उसी भवमें नाश करताहै और जो वेदक सम्यग्दृष्टिहोतो प्रमत्त वा अप्रमत्त गुण स्थान में धर्म ध्यानका आश्रय करके सातही प्रकृतियों का नाशकरताहै। और

काऊण पमत्तेयर- । परियं तसयाणि खवइ पाउग्गो ॥
होऊण अप्पमत्तो । विसोहिं पाऊरिऊण खणं ॥५१७॥
करणं अधापवत्तं । पढमं पडिवज्जिऊण सुक्कं च ॥
जायइ अपुव्वकरणो । कसायखयणुज्जओ वीरो ॥ ५१८ ॥
एक्कक्कं ठिदिखंडं । पाडइ अंतोमुहुत्तकालेण ॥
ठिदिखंडपडणकाले । अणुभागसयाणि पाडेई ॥ ५१९ ॥
गच्छइ विसुद्धमाणो । पडिसमयमणंतगुण विसोहीए ॥
लद्धीए अणियाट्टिगुणं । तत्थ वि सोलह पयडीइ ५२० ॥

अर्थ-अप्रमत्त गुणस्थान के चढने पर्यंत प्रायोग्यलब्धि के बल से त्रसकाय वगैरः कर्म प्रकृतियों का नाश करके अप्रमत्तगुणस्थान वर्त्ती होता है। उसके पश्चात् अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होकर वह अप्रमत्त साधु एक क्षण में अधःप्रवृत्तकरण नाम का पहला करण और प्रथम शुक्ल ध्यान (पृथक्त्ववितर्कविचार) को अंगीकार करके अपूर्व करणको प्राप्त होता है। और कषायोंके नाश करने में उद्यमी हुवा वह वीर अन्तर्मुहूर्तकालमें स्थिति बांधके एक एक खंडका नाश करता है। स्थितिबंध के एक खंडके पतन (नाश) होते समय अनुभाग बंधके सैंकड़ों खंड पतनको प्राप्त होजाते हैं। इस प्रकार प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्ध होता हुआ विशुद्धलब्धिके बलसे वह साधु अनिवृत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है और वहांपर सोलह प्रकृतियों का नाश करता है।

अट्ठकसाये च तओ । णपुंसयं तहेव इत्थीवेयं च ॥
छण्णोकसायपुरिसं । कमेण कोहं पि संछुहई ॥ ५२१ ॥
कोहं माणं माया । एवं पि छुहइ लोहम्मि ॥
बायरलोहं पि तओ । कमेण णिट्ठवइ तत्थेव ॥ ५२२ ॥

अणुलोहं वेयंतो । संजायइ सुहुमसंपरायो सो ॥
खविऊण सुहुमलोहं । खीणकसाउ तउ होई ॥ ५२३ ॥
तत्थेव सुक्कझाणंविदियं पडिवज्जिऊण तो तेण ॥
णिद्दापयलाउ दो । चरमसमयम्मि पाडेई ॥ ५२४ ॥
णाणंतरायदसयं । दंसणचत्तारि चरमसमयम्मि ॥
हणिऊण तक्खणे चिय । सजोगकेवलिजिणो होइ ॥ ५२५ ॥

अर्थ-इसके पश्चात (प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान रूप क्रोध, मान, माया, लोभके भेदसे) आठ कषायों का नाश करता है और तैसे ही नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छै नोकषाय (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) और पुरुषवेद इनका क्रमसे नाश करता है और क्रोधका भी नाश करता है। तथा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में क्रोध,मान,माया और लोभमें से बादर लोभ इनका पूर्ण नाश करकै सूक्ष्म लोभका अनुभव करने वाला वह साधु सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानवर्ती होता है। इसके अनन्तर सूक्ष्मलोभ को भी नाश करकै क्षीणकषाय नाम का जो बारहवां गुणस्थान है तिसको प्राप्तहोता है और वहांपर दूसरे शुक्ल ध्यान (एकत्व वितर्कविचार) को प्राप्त होकर तिसके योगसे निद्रा और प्रचला इन दो कर्मोंका अन्तसमयमें नाश करता है और इसीप्रकार ज्ञानावरणकी पांच व अन्तरायकर्म की पांच और दर्शनावरणकर्मकी चार प्रकृति बारहवें गुणस्थान के अन्त समय में नाशकरकै तत्काल वह संयोगकेवली जिन अर्थात् १३ वां गुणस्थानवर्ती होताहै ।

तो सो तियालगोयर- । अणंतगुणपज्जयपयत्थं ॥
जाणइ पस्सइ जुगवं । णवकेवललद्धिसंपण्णो ॥ ५२६ ॥

अर्थ-तब ९ प्रकारकी केवललब्धिका स्वामी हुआ वह केवली जिन तीन कालके अनन्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्योंको युगपत् जानता और देखता है ।

दाणे लाहे भोए । परिभोए वीरिए य सम्मत्ते ॥
णवकेवलद्धीओ दंसणणाणे चरित्तेय ॥ ५२७ ॥

अर्थ-दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य,सम्यक्त्व,दर्शन,ज्ञान, और चारित्र ये ९ लब्धि होती हैं।

उक्कस्सं च जहण्णं । पज्जायं विहरिऊण सिज्झेई ॥
सो अक्कियसमुग्घावं । जस्साउसमाणि कम्माणि ॥ ५२८ ॥
जस्स ण हु आउसरिसा- । णि णामगोयाणि वेयणीयं च ॥
सो कुणदि समुग्घायं । णियमेण जिणो ण संदेहो ॥ ५२९ ॥

अर्थ–जिनके आयु कर्मकी स्थिति के बराबर अन्य कर्मों की स्थिति बाकी है वह केवली जिन समुद्घात किये विनाही उत्कृष्ट व जघन्य पर्याय पूर्ण करके सिद्ध होते है और जिनके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मकी स्थिति आयु कर्मकी स्थिति के बराबर नहीं है अर्थात् अधिकहै वह केवली जिन नियम से समुद्घात करते हैं इसमें सन्देह नहीं है।

छम्मासाउगसेसे । उप्पएणं जस्स केवलं णाणं ॥
सो कुणइ समुग्घायं । इदरो पुण होइ वा भणिजो ॥ ५३० ॥

अर्थ–जिसके छःमहीने की आयु बाकी रहने पर केवल ज्ञान उत्पन्न होताहै वह केवली समुद्धात करताहै और इसके सिवाय अन्यकेवली समुद्धात करते भी हैं और नहीं भी करते है। कुछ-नियम नहीं ऐसा कहाहै।

अंतोमुहुत्तसेसाउगम्भि । दंडं कवाडपयरं च ॥
जयपूरणमथ कवाड । दंडं णियतणुपमाणं च॥ ९११ ॥

अर्थ=जब आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त मात्र बाकी रहता है (और अन्य गोत्र आदिकर्मों की स्थिति अधिक रहती है) तब (तिन गोत्र आदिकर्मों की स्थिति आयु कर्मके बराबर करने के लिये समुद्धात करनेवाला केवली अपनी आत्माके प्रदेश १४ रज्जु ऊंचे दंडाकार करताहै, दूसरे समयमें कपाटके आकार तीसरे समयमें प्रताराकार और चौथे समयमें लोकपूरण (समस्त लोकप्रदेशों में व्यापना) करताहै पांचवे समयमें पुनःप्रताराकार छठे समय में कपाटके आकार सातवें में दंडाकार और आठवें समय में अपनी देह प्रमाण करता है।

एवं पएसपसरण- । संवरणं कुणइ अट्ठसमयेहिं ॥
होहिंति जोयजरमे । अघाइकम्माणि सरिसाणि ॥ ९१२ ॥

अर्थ–इस प्रकार आठ समयमें अपनी आत्माके प्रदेशोंको वि-

स्ताररूप व संकोचरूप करताहै और तेरहवें गुणस्थान के अन्त में बाकीके अघातियाकर्मों की स्थिति आयु कर्मके बराबर होजातीहै।

वायरमणवचजोगे। रुंभइ थो थूलकायजोगेण ॥
सुहुमेण तं पि रुंभइ। सुहुमे मणवयणजोगे य॥ ५३३ ॥
ता सुहुमकायजोगे। वेयंतो झायए तइय सुक्कं ॥
रुंभित्ता तं पि पुणो। अजोगकेवलिजिणो होइ ॥ ५३४ ॥

अर्थ-इसके पश्चात् स्थूल काययोगसे स्थूल मनोयोग और स्थूल वचनयोगका निरोध करता है और सूक्ष्मकाययोगसे स्थूल काययोग व सूक्ष्म मन वचन योगोंका निरोध करताहै।तिस समय सूक्ष्म काययोगका अनुभव करने वाला वह केवली तीसरे शुक्ल ध्यानका ध्यान करता है और तिसके योगसे सूक्ष्म काययोगका भी निरोध करके अयोग केवली अर्थात् १४ वां गुणस्थानवर्ती होजाताहै।

वावत्तरिपयडीओ। चउत्थसुक्केण तत्थ घाएइ ॥
दुचरमसमयम्मि तओ। तेरस चरमम्मि णिट्ठवइ ॥ ५३५ ॥
तोतम्मि चेव समये। लोयग्गे उड्ढगमणसब्भाओ ॥
संचिट्ठइ असरीरो। पवरट्ठगुणप्पओ णिच्चं ॥ ५३६ ॥

अर्थ-तिस चौदहवें गुणस्थान में चौथे शुक्लध्यान के योग से पहले समयमें ७२ बहत्तर कर्म प्रकृतियों का नाश करता है और दूसरे समयमें बाकीकी १३ तेरह प्रकृतियों का नाश करता है। फिर उसी अन्तिम समयमें ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अग्रभागमें देहरहित और उत्कृष्ट आठ गुणोंसे युक्त होकर हमेशाके लिये निवास करता है।

सम्मत्तणाणदंसण-। वीरियसुहमं तहेव अवगहणं ॥
अगुरुलहुमव्वावाहं। सिद्धाणं वण्णिया गुणट्ठेदे ॥ ५३७ ॥

अर्थ-सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व, ये सिद्धोंके आठ गुण वर्णन कियेगयेहैं।

मोहक्खयेण सम्मं। केवलणाणं हणेइ अण्णाणं ॥
केवलदंसण दंसण। अणंतवीरियं चांतरायेण ॥ ५३८ ॥
सुहुमं च णामकम्मं। आऊहणणेण हवइ अवगहणं ॥
गोयं च अगुरुलहुयं। अव्वावाहं च वेयणीयं च ॥ ५३९ ॥

अर्थ-मोहनीय कर्मके क्षय होनेसे सम्यक्त्व नामका गुण, ज्ञानावरणीयके क्षयसे केवलज्ञान, दर्शनावरणीय के क्षयसे दर्शन, अन्तरायके नाशसे अनन्तवीर्य, नामकर्मके नाशसे सूक्ष्मत्वगुण, आयुकर्म के नाशसे अवगाहनागुण गोत्र कर्मके क्षयसे अगुरु लघुत्वनामका गुण और वेदनीय कर्मका अभाव होनेसे अव्यावाधत्व नामका गुण प्रगट होताहै। (निश्चयनय से सिद्धात्मा अनंत-गुणस्वरूप है)।

जं किं पि सोक्खसारं। तिस्सु वि लोयेसु मणुयदेवाणं ॥
समणंतगुणं पि ण एय-। समयसिद्धाणुभयसोक्खसमं ॥ ५४०॥

अर्थ-तीन लोकमें मनुष्य और देवोंको जितना कुछभी उत्तम सुखहै उससे अनंतगुणा सुखभी एक समय में अनुभव किये हुए सिद्धों के सुखकी बराबरी नहीं कर सकताहै।

सिज्झइ तइयम्मि भवे। पंचमए को वि सत्तमट्ठमए ॥
भुंजिवि सुरमणुयसुहं। पावेइ कमेण सिद्धपयं ॥ ५४१ ॥

अर्थ-(उत्तमरीतिसे श्रावकाचार को पालने वाला गृहस्थ) तीसरे भवमें मुक्तिको प्राप्त होता है और कोई २ देवलोक और मनुष्यलोकके सुखोंको क्रमसे भोगकर पांचवें, सातवें, या आठवें जन्ममें सिद्ध पदको प्राप्त होता है।

आसी ससमय परसम-। यविदू सिरिकुंदकुंदसंताणे ॥
भव्वयणकुमुयवणसिसि-। रयरो सिरिणंदि णामेण ॥ ५४२ ॥

अर्थ-श्री कुन्द कुन्दस्वामीकी आम्नाय में श्रीनन्दिनामधारक आचार्य अपने मत और परमतके शास्त्रोंका जानने वाला और भव्यजनरूप कमलोंके वनको चंद्रमाके समान प्रफुल्लित करनेवाला हुआ।

कित्ती जस्सेंदुसुब्भा सयलभुवणमज्झे जहेत्थं भमित्ता।
णिच्चं सा सज्जणाणं हियवयणसोए णिवासं करेइ॥
जो सिद्धंतंवुरासिं सुणयतरणमासेज्ज लीलावतिण्णो।
वण्णेउं को समत्थो सयलगुणगणं सेवियंतो वि लोए॥ ५४३ ॥

अर्थ-जिसकी चन्द्रमासमान निर्मलकीर्ति सर्वजगत् में भले प्रकार फैलकर सज्जन पुरुषों के हृदय वचन और कानों में सदा निवास करती थी-और जो उत्तम नयरूपी नौका में बैठकर सिद्धांतरूपी

समुद्रको सहजही तरता था ऐसे उस श्रीनन्दी आचार्य के सकल गुणों को वर्णन करने को कोई न समर्थ होसकताहै? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है।

सिस्सो तस्स जिणिंदसासणरउे सिद्धंतपारंगउे।
खंतीमद्दवलाहवाइदसहाधम्मम्मि णिचोज्जउे॥
पुण्णेंदुज्जलकित्तिपूरियजउे चारित्तलच्छीहरो।
संजाउे णयणंदिणाम मुणिणो भव्वासयाणंदउे॥ ५४४॥

अर्थ-उस श्रीनन्दी मुनिका शिष्य नयनन्दि हुवा जो जैन शास्त्रों में रत और सिद्धान्त का पारगामी था तथा क्षमा, मार्दव आर्जव आदि दशधर्म के पालनेमें सदा उद्यमवान् रहताथा और ऐसी चारित्ररूपी लक्ष्मीका धारक था जिसकी निर्मलकीर्ति पूर्णमासी के चन्द्रमा समान जगत्में फैली हुईथी और जो भव्यजीवोंके चित्तको आनन्द का देनेवाला था।

सिस्सो तस्स जिणागम-। जलणिहिवेलातरंगधुयमाणो॥
संजाउे सयलजए-। विक्खाउे णेमिचंदुत्ति॥ ५४५॥

तस्स पसाएण मए। आयरियपरंपरागयं एयं॥
वच्छल्लायररइयं। भवियाणमुवासयज्झयणं॥ ५४६॥

अर्थ-उस नयनन्दी का शिष्य नेमिचंद्र हुवा जो जिनागमरूपी समुद्रकी लहरोंसे धूयमान था और सर्व जगत्में विख्यात था उस नेमिचंद्रके प्रसादसे मैंने यह आचार्यपरम्परासे चला आया जो उपासकाध्ययनशास्त्र, तिसको प्रेम और आदर से भव्यजीवों के लिये रचाहै।

जं किं पि एत्थ भणियं। अयाणमाणेण पवयणविरुध्दं॥
खमिऊण पवयणधरा। सोहित्ता तं पयासंतु॥ ५४७॥

अर्थ-इस ग्रंथमें अज्ञानभावसे यदि मुझसे कुछ आगमके विरुद्ध कथन किया गया हो तो उसके लिये आगमके जानने वाले मुझ पर क्षमाकरें और शुद्ध करके प्रकाशित करें।

छच्चसया पण्णासु-। त्तराणि एयस्स गंथपरिमाणं॥
वसुणंदिणा णिबध्दं। वित्थरियव्वं वियड्ढेहिं॥ ५४८॥

अर्थ-छःसौ पचास श्लोक (३२ अक्षरों का एक श्लोक) परिमाण यह उपासका ध्ययन नामका ग्रंथ वसुनन्दी आचार्येन रचा है। विद्वान् लोगों करकै यह विस्तार करने योग्य है।

समाप्त.

देवशास्त्र गुरुपूजा संस्कृत प्राकृत
भाषा अर्थ सहित।



जैसा भाव होता है वैसाही कर्म बन्ध होता है, पूजन पाठको न समझकर केवल द्रव्य चढानेसे पुण्यबंध नहीं होसक्ता है, इसकारण हमने देवशास्त्र गुरुपूजा संस्कृत प्राकृतको जो नित्य पूजनके समय पढ़ी जाती है सरल हिन्दीभाषा अर्थ सहित छपवाया है जिससे पूजन करनेवालोंको पूजन पाठका अर्थ सहजही में समझ में आसक्ता है, पाठको समझनेके पश्चात् पूजन करने से अवश्य पुण्य प्राप्त होगा इसकारण सब भाइयोंको यह पुस्तक मँगानी चाहिये मूल्य तीन आना।

द्रव्यसंग्रह।

बहुत विस्तारके साथ सरल हिन्दी भाषाटीका सहित सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र, छै द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और नव पदार्थ जैन सिद्धान्त के समझने के वास्ते यह अतिही उत्तम पुस्तक है। श्रीगोमट्टसार और तत्त्वार्थ सूत्रकी महान् टीका श्रीसर्वार्थसिद्धिके आधारपर हमने इसकी टीका बहुत विस्तारके साथ लिखी है और सर्व कथनको बहुत सरल और सुगम कर दिया है। इस ग्रन्थको पढकर सब कोई जैनसिद्धान्त से जानकार होसक्ता है यह एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ बनगया है सब जैनी भाइयोंको इस ग्रन्थ का पढ़ना अति आवश्यक है। हम इस ग्रन्थकी बहुत प्रशंसा नहीं करना चाहते हैं बल्कि अपने भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह एक बार मँगाकर देखैं तब वह अपने आप ही प्रशंसा करने लगैं। मूल्य सिर्फ आठ आना।

परमात्मप्रकाश।

सरल हिन्दी भाषाटीका सहित—यह प्राकृत ग्रन्थ निश्चय कथनी का एक उत्तम ग्रन्थहै इसके पढ़नेसे वैराग्य की बहुत बड़ी प्रेरणा होती है और चित्त में शांति प्राप्त होती है—अर्थ बहुत सुगम कियागया है—मूल्य छै आना।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

यह भी श्रावकाचार का अतिही उत्तम संस्कृत ग्रन्थ है सरल हिन्दीभाषा में टीका करके छपवाया है हिंसाका स्वरूप इस ग्रन्थ में बहुत ही उत्तम वर्णन कियागया है—मूल्य चारआना।

जैनसिद्धान्तप्रचारक मण्डली

देवबन्द, जिला-सहारनपुर



श्रीजिनवाणीके भक्तोंने जैनशास्त्रोंके उद्धारके वास्ते यह मंडली बनाई है। इस मंडलीने जैनशास्त्रोंके छपवाने का बहुत बड़ा बीड़ा उठाया है। बहुतसे ग्रन्थ विद्वानों द्वारा सरल हिन्दीभाषामें टीका कराकर छपचुके हैं और बहुत से छपरहे हैं और बहुतसे ग्रन्थोंकी टीका होरही है—इसके अतिरिक्त देहली, बम्बई, वर्धा, कोल्हापुर, शोलापुर, बनारस, इटावा, कटनी आदि सर्वही स्थानों के छपेहुवे जैनग्रन्थ यहांसे मिलसकेहैं, छपाकर सूचीपत्र मंगाकर देखिये और जैनशास्त्र मंगाइये।

सब भाइयोंको उचित है कि वह अपने घरमें जैनशास्त्रों का भंडार रक्खें, लिखित ग्रन्थोंमें धन बहुत लगता था इस कारण सब भाइयोंको अपने घरमें ग्रन्थोंका भंडार रखना कठिन था, परन्तु अब छपजानेके कारण थोड़ेही द्रव्यमें बहुतसे ग्रन्थ मिलजाते हैं इसवास्ते यह अवसर नहीं चूकना चाहिये, ग्रन्थोंका संग्रह घरमें होनेसे आप वा अपना बेटा, पोता, भाई, भतीजा, बाप, दादा, चाचा, ताया, माता, स्त्री, बहन, बेटी आदिक कोई न कोई उन ग्रन्थों को पढ़कर लाभ उठाता ही है और ग्रन्थ मौजूद होने के कारण थोड़ा बहुत समय स्वाध्याय और धर्म ध्यान में लगही जाता है—

भाइयोंका दास-सूरजभानु वकील मन्त्री

जैनसिद्धान्तप्रचारक मंडली

देवबन्द (सहारनपुर)